सेवासदन

(८)

दिन के ९ बजने का समय है। प्रयाग में सेवासदन के एक कमरे में देवीदीन की धर्मपत्नी पारवती बैठी है। पास ही एक दरी पर एक वृद्ध और एक अधेड़ सा मनुष्य बैठा है। दोनों ही आँखें मिली हुई हैं। वृद्ध के अंग पर केवल एक धोती है। अधेड़ मनुष्य की देवीदीन की पत्नी की ओर ध्यान पूर्वक देखते हुए कहा।

"हूं।" [illegible] के बाद अभी आंखें मिलती हैं [illegible] दिखा।"

कोई चिंता नहीं है। दो तीन दिन में स्वस्थ हो जायगी।"

अच्छा है, किसी को आराम हो जाय बच्चे का जीवन विपत्ति में न पड़े। [illegible] गरीब इन अवस्था के सिवा [illegible]।"

[illegible] मालूम हुआ [illegible] किंतु उन [illegible] कोई इस चिन्ता पता नहीं लगा सकता। वे सभी एक कुटुम्ब के व्यक्तियों की तरह रहते हैं। प्रारम्भ में इन युवकों के त्याग और उद्योग से इस संस्था की बड़ी प्रतिष्ठा हो चली थी। क्योंकि प्रायः सभी कार्यकर्ता पूरा समय देने वाले और लगनवाले थे। किंतु सेवा के क्षेत्र में नीहारिकों की कमी नहीं है। अतः कुछ लोगों ने उसे लोगों को नीचे गिराने का बीड़ा उठा लिया।

इस में सन्देह नहीं कि सत्य को कोई नष्ट नहीं कर सकता और इस विषय में सौ प्रयत्न करने पर भी असत्य अभीष्ट सिद्ध नहीं कर पाए। किंतु कि सी अल्पज्ञान लोगों पर तो कुछ उसका प्रभाव पड़ ही। परंतु इन बातों से सेवा सदन के संचालकों उत्साह मन्द नहीं पड़ा। वे अपने कर्तव्य पर डटे [illegible] एक दिन सदन बैठी हुई थी। उपस्थित हो गई सदन बैठी हुई थी के बड़े लोभी थे। अपनी [illegible] से बाहर [illegible] सेवा को अपनी [illegible] करते थे। [illegible]

आगे तो अब स्त्रियों का वह सिंहासन भी
छीन लिया गया है। तो यह अंधेरी थी।"
"नहीं, अंधेरी नहीं थी। इस के साथ इस का
लड़का और [illegible] थी। ये लोग नहीं डूबे।
बीच में मालूम होने पर हम लोगों ने उन का
उद्धार किया।"
"ओह अपराधियों का क्या हुआ?"
"अपराधियों का क्या है, वैसा ही। मुकदमा
है? अपराधी तो स्वयं पुलिस का एक एक-
इन्फोर्मर था। फिर भी रिपोर्ट तो करनी है।
कमिश्नर को भी पत्र लिखा है। किंतु
शायद कुछ हो।"
कमिश्नर पुलिस की पुराने अपनी दकियानूसी है।
"हूं जो होना होगा जाने क्या है? अच्छा, आप
इन्हें घर ले जाइये। मैं शाम को फिर देख
जाऊंगा।" यह कह वैद्य उठा।
"अच्छी बात है।" कहता हुआ शांति लाल भी
उठा और सेंडक को तट पहुंचा प्रणाम को
वापिस आगया।

लगा। कार्यकर्ताओं के
माता पिता तंग किये जाने लगे। गुण्डों के अड्डा
छोड़ने की धमकी आने लगी और अन्य कई
इसी प्रकार की [illegible] दिखाया जाने लगा।
'नवजीवन' एक शुद्ध सामाजिक संस्था थी,
किंतु पुलिस के प्रयत्नों से अब वह धीरे २
राजनैतिक रूप धारण करने लगी। ज्यों ज्यों
पुलिस की बदमाशी बढ़ने लगी त्यों त्यों ही
नवजीवन वालों की दृढ़ता भी बढ़ने लगी। अब
यह साधारण विवाद का नहीं, आत्म रक्षा का
हो पड़ा।

किंतु पुलिस का प्रयत्न सर्वथा निष्फल नहीं
गया। कितने ही युवकों के मातापिता उन्हें
[illegible] में रोक रहे थे और कितने ही भयभीत थे।
अतः उन्हों ने भयभीत हो कर अपने लड़कों
को नवजीवन से अलग करने की चेष्टा की और
जब लड़कों ने उन की अनुचित आज्ञाएं मानने
से इन्कार कर दिया तो उन्हों ने उन से सब
सम्बन्ध त्याग दिया।
युवकों ने भी इस की चिंता नहीं की। पुलिस
को आशा थी कि इस हमले के बाद तो इस संस्था
का सारा जोश ठंडा हो जायगा, किंतु उस ने देखा कि
जोश ठंडा तो नहीं और दृढ़ हो गया है।

X बाते ने एक दीवानी हुई थी दी, [illegible]
पा दी के उदय पड़ी। शांतिनिकेतन के [illegible]
पुलिसेन दिशाओं का उल्लेख नहीं किया [illegible]
[illegible] ने न हुए गवाहों [illegible]

शान्तिलाल सेवासदन

सदन एक छोटी सी किंतु सच्चे ... संस्था है। सेवा-
है। अनेक ... सभी जातियों के लोग ... जाय, दान ... देती। विद्यालय में ... अच्छा ... होता है, उतना ... नहीं होता। इसीलिये अब अधिक ... काम के कारण सेवासदन का कोई आदमी आवश्यक-
ताओं की पूर्ति ... न हो, तब ताधले का ... दिवाला पड़ने लगा।

फिर भी सेवासदन वाले अपने पथ पर डटे ही रहे। जो लोग जानते थे वे उन्हें सहायता भी देते ही थे। बस यही संक्षेप में इस छोटी सी संस्था का इतिहास है।

किंतु ... की मृत्यु ... दो आश्रय देने के कारण इस संस्था की ... अभी बढ़ गई। ... इन्हें आश्रय देने की घटना का ... देने वाले एक पुलिस ... था। फलतः सारी पुलिस इस ... हो गई। सहायता ... पत्रिका दीक्षा दी जायेगी, अपने यहां ... लाकर ... दीक्षा दी किशोरी ... था, "सेठजी! यहां ... सहायता गांधी ... तक सिलजाते हैं, तब ... ही क्या है?"

शान्तिलाल बोला, - "इन लोगों की बुराई-भलाई ... विचार करना अपना कार्य नहीं है। प्रत्येक देश के सार्वजनिक जीवन में, प्रारंभ में ऐसा गन्दा पन होता ही है। किंतु अंत में सब अपनी भूलें अनुभव से स्वयं ही समझते हैं और उन्हें सुधारते हैं। आखिर धर्म के देश, प्रेम के भाव तो उनमें भी हैं ही। आज नहीं तो कल उनका सच्चा रूप निश्चित है। मैं तो सदन के सदस्यों के साथ-साथ ... क्या अपनी सभाओं में कम धन्यवाद के पात्र हैं? आज यहां, कल वे अधिक युवक ... अपना सम्बंध त्यागने बैठे हैं!"

एक बोला, "तो, उन्हें भले कौन कहता है?"

शान्तिलाल बोला: "भले को ... है। मैं तो कहता हूं कि उन्हें ...

पुलिस को आज भी क्रोध आया और वह अधिक मीन उपायों का अवलम्ब लेने को उद्यत हुई। अब सेवादल के कार्य कर्ताओं के गुप्त समितियों से सम्बन्धित होने और साम्यवाद तक के ढाँचे में राजनैतिक कार्य करने की रिपोर्टें दी जाने लगीं। सेवादल के विरोधी भी उनके बढ़ते हुए प्रभाव और उनके कुशलियों पुलिस को उँगली सेवादल के लोगों ने भी अपने बदले और चलिये सिरों की एक सभा की। एक दिन सि सब एकत्र हुए। वैद्य वामन राव ने सभापति का आसन ग्रहण किया। शान्तिलाल ने पुलिस की चालों और सदस्यों की गिरफ्तारियों का सारा वृत्त सुनाया। X सब सदस्य क्रोध.

"पुलिस ही नहीं, पुलिस के साथ अब वे सर्व- - समितिक कार्यकर्ता कहे जाने वाले भी मिल गए हैं, जो सदस्य से विरुद्ध हैं।"

दूसरा बोला - "मैं ऐसे लोगों को, सार्वसमितिक कार्यकर्ता नाम से अभिहित करने का ही विरोधी हूँ। ये देशद्रोही हैं!"

तीसरा बोला "इसे तोड़ दो तब समिति

शान्तिलाल का दिमाग भंग हुआ, बोला, "आओ बिहारी, कहो कैसे कैसे कष्ट हैं?"

बिहारी के होंठ सूखने लगे। कुछ सम्भल कर बोला, "क्यों? क्यों पूछते हो?" शान्तिलाल का दिमाग अभी बिहारी की अवस्था की ओर न गया था।

बोला, "पूछता हूँ इसलिये कि आज दिवाली है!"

बिहारी - "हाँ। अपने तो सदा ही दिवाली है।"

शान्ति - "अपने तो सदा दिन काला है। किन्तु इन बच्चों के? ये क्या मन में सोचते होंगे कि यदि आज हमारे माता-पिता जीवित होते तो हमारे लिये भी कुछ खिलौने आदि ले जाते। कुछ अच्छा भोजन मिलता। कपड़े आदि सिलाए जाते!"

बिहारी "हाँ, जब दिन रात ऐसी बातें देखते सुनते हैं तब यह ध्यान आए बिना कैसे रहेगा?"

शान्ति "इसी लिये मैं सोच रहा हूँ कि दल को (ये) बच्चे के उन में से जो हैं अधिक काम के हैं आज के भोजन में कुछ विशेषता दी जाय और शाम के शाम को बच्चों को खाने दिखाते समय उन दीपावली की मिठाई दे दी जाय।"

बिहारी की आँखों में [illegible] लगीं। वह कठिनता से अपने आँसुओं को रोक कर बोला, "किन्तु हमें [illegible]

दो जगहों [illegible] पर विचार करना चाहिये। यदि हम अपने विचारों के प्रति ईमानदार न रहेंगे और अपने स्वभाव पर डटे रहेंगे तो अंत में सत्य की विजय निश्चित है। [redacted] इस सम्मेलन में कि० ने अपने कई लेखों और वक्तव्यों में कहा है। दो जगह अदालतों में हड़ताल का कार्य चल रहा है। दो जगह बीमारी के लिये कार्य करने का कार्य जारी है। हम लोगों को हम से हम को महीने के लिये आर्थिक सहायता का प्रबंध करना चाहिये। उसके बाद हमारा संगठन और बीमारी भी तब तक शांत हो जायगी।"

अब इन प्रश्नों को हल करने पर विचार आरम्भ हुआ, किंतु प्रश्न हल का था। वह आसानी से सुलझता न था। अतः में दो घंटे विचार के पश्चात् आज का अधिवेशन स्थगित हुआ।

(९१ अ) (एक दिन बाद) (९१ब) [illegible] और ६ x से ६ तक)

दिवाली का दिन था। शांतिलाल अकेला बैठा कुछ विचार मग्न हो [illegible] [illegible] [illegible]

अंत में उस ने सोचा विचार को एक मित्र के नाम चिट्ठी लिखी। दिवाली के दिन दिल्ली दैन-लेन नहीं करते। ऐसे ही बातें अनुचित मानी जाती हैं। इसी लिये आज दिल्ली व्यवहारिक ढंग से विचार सोचना व्यर्थ था। किंतु उक्त मित्र आर्य-समाजिक थे और इस लिये उक्त चिट्ठी के दाम पर गए। थोड़ी देर में ही चिट्ठी छः हाथ लिये आ पहुंचा। अब क्या था? वर्ष निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कार्य शुरू हो गया। मुख्य २ व्यक्तियों से विचार और दिशा को अच्छी तरह न हो पाया कि हमें [illegible] [illegible] [illegible]

शान्ति:- "क्यों क्या गए ?"

बिट्टी - "मैं तो लोन देने चला गया था। हमको
का बहुत बड़ा दौड़ की जेब में था और दौड़
खूंटी पर टंगा हुआ था। कौन का देता तो
हमको लगेत बहुत ग़ायब है।"

अब शान्तिलाल ने बिट्टी की और इंकि उम्र
किंतु यह क्या बिट्टी को क्या हो गया है ? उसके
मुख पर इतना दुख कहां से आ गया कि शान्तिलाल को
बोध के स्थान पर करुणा होने लगी। वह एकदम शांत
हो की बोला, "कोई हर्ज नहीं बिट्टी ! चोरी हो
गई तो तुम क्या करो ? तुम चिंता मत करो।"
किंतु शान्तिलाल के मन में क्या बीत रही थी
यह तो वही जानता था ? कारण कि वह अपने
इस कार्यक्रम को सफल बनाने के कुछ व्यक्तियों और
बच्चों पर एकदम से चुका था और उन्हीं ने उसे
कमाई की तरह एक दो लाख दिया था। शांतिलाल
ने सोचा " निराश में निराश हुआ नहीं होती,
किंतु जिन बच्चों के मनमें कुछ आशा जाग्रत
की दीपक ज्योति हुई। बच्चों ने उसे एकाएक गुरु
दीक्षा की बात कही। शान्तिलाल समझ गया
कि सम्भवत: कुछ न कुछ और गड़बड़ हुई है। उसने
दो तीन आदमी बिट्टी की खोज में भेजे। किंतु
उन्हें अधिक खोज न करनी पड़ी। वह बिट्टी
बेडी पर ही एक भक्ति के गाड़ी चबूतरे पर
बिलकुल मग्न बैठा हुआ मिल गया।

× × × × × ×

दूसरे ही दिन सदन में तीन सम्मानों की
मांग आई और इस प्रकार तीन व्यक्ति (एक पुरुष
दो) तब ही जगहों पर काम करने चले गए।
इन्हों ने 20-20 रुपये महिने में अपना जीवन
निर्वाह करते हुए, शेष वेतन सदन को भेजने का
निश्चय किया और इस से शांति लाल को कुछ
कुछ साहस बँधा।

किंतु यह अवस्था अधिक दिन नहीं हुई। मानो
दूसरे ही दिन भगवान सदन के सेवकों की इच्छा
और त्याग की परीक्षा प्रारम्भ हो गई। दोपहर को
खाने के

(29 व)

देखो पेज 44

X युद्ध कला सीखने में भी उसने अपनी अच्छी योग्यता दिखलाई। थोड़े ही दिनों में वह दास तुर्की, अरबी, फ़ारसी, हिंदी आदि भाषाएँ सीख गया और पूरा सिपे

X साथ ही उसे यह भी ध्यान रखना है, यदि अब किसी कवि ने कोई बात दिखावे के लिए आपके सिर ते वह उसी से दिखावेगा? तब क्या करे? तब वे थोड़ा सा चंदन में घिसना होगा? हिंदू चंदन में शांतिजल के समान दिखाई देता है कहेगा? मुझने पर ऐसे क्या उचित देगा? तब? कहीं इसलिए समझा जाएगा है। अंत में कवि को साथ रहा चंदन गया।

बिहारी दे दौरा गुम हो गए। उसे कुछ न सूझा कि क्या करे? उस ने सिर्फ यह बात पूछी नहीं की किंतु उसे सिखों ने इतना परेशान कर दिया उसे रिश्वत आदि देकर एक विधवा की लड़की दिलाई देने लगा। X अंत में वह एक दिन वहाँ से भाग गया एक गाँव में विवाह करवा कर वहीं बस गया। उसका एक बेटा था। बिहारी शक्तिशाली के अत्यन्त विश्वस्त विद्यार्थी और साथियों में से एक था। बिहारी को शिक्षित होने के बाद उसके ध्यान में यह बात बैठी हुई थी कि दीपसिंह के दिन हत्या लोभ लाल या आर्थिक हानि पहुंचना अशुभ लक्षण है। कि उसके हाथ से तो दीपसिंह की दो दुर्घटना यह घटना घटित हुई थी। यही कारण है कि वह इतना घबरा गया।

जब बच्चों ने जब बिहारी लाल को अपने साथ न देखा तो वे भी आगे न जाकर खड़े हो गए। किंतु बिहारी वहां से न आया था। इसीलिये मोहन के समझाने पर भी बुजदिल हुई तब बिहारी के न आने से पूर्व दोनों पक्षों की ओर से गए। युद्ध ने भीषण रूप धारण किया। सैनिकों का मूल्य बढ़ने लगा। इसीलिए ने भी इस अवसर को उपयुक्त समझ अपना नाम लिखा लिया, फलतः इसीसिंह का शार्दूल गुलाब ने सिंह छूट और यह दौड़ में भाग ले लिया गया। लेकिन कहा जाता है कि इसीसिंह अंग्रेजी सीख गया था। इसीलिये X युद्ध में जाने के पहले ही सूबेदार बना दिया गया। इस में संदेह नहीं कि इतनी उन्नति उसने देखकर सुखी हो गई थी। इस में बहुत कुछ हाथ उसके नवनियुक्त अफसर लि० हैडसन का था, जो इसीसिंह पर बहुत प्रसन्न था।

X X X X

युद्धस्थल में एक दिन लि० हैडसन को अपनी सेना लेकर दुश्मन की लाइनों पर हमला करने का हुक्म हुआ। लि० हैडसन ने इसीसिंह सहित तक तसारी का आक्रमण शुरू किये किंतु बड़ी लोग मरा में न आए। उन्हें ने पहाड़ की ओट से सामना किया। इसीसिंह ने कहा लेफ्टिनेंट लि० हैडसन से कहा, "क्यों न थोड़ी सी सेना उधर इन लोगों को पीछे से घेर लें।"

किंतु हैडसन ने इसी बात को उसका साहस

बिहारी के द्वारा गुम हो गए। मैं कुछ न बूझा कि क्या हो ? उस ने किसी पर यह बात प्रकट नहीं की किंतु उसे बिलायें ने इतना परेशान कर दिया कि उसे रोशनी आदि देखना एक विपत्ति की तरह दिखाई देने लगा। ×× अन्तमें वह एक दिन दोपहर को एक गली में विवाह गया और वहीं बैठ गया। बिहारी के द्वारा पकड़ा जाने पर उसे एक दण्ड दिया गया। बिहारी शशिलाल के अत्यन्त विश्वस्त विद्यार्थी और साथियों में सर्वोत्तम होने के कारण ही शिक्षित हुये थे। मैं भी उस के ध्यान में यह बात बैठी हुई थी कि दीपमालिका के दिन हत्या किया जाना या आर्थिक हानि पहुंचना अशुभ लक्षण है। किंतु उस के हाथ से तो दीपमालिका के ही दिन यह घटना घटित हुई थी। यही डर था कि वह इतनी घबरा उठा।

जब बच्चों ने जब बिहारी जाने को अपने साथ न देखा तो वे भी आगे न जाकर लौटने लौट पड़े। किंतु बिहारी वहां से न आया था। इसी लिये मौजूद के समय जब सब की दुआहट हुई तब बिहारी के न आने से पूछ ताछ पक्षों की ओर से होने लगी। युद्ध ने भीषण रूप धारण किया। सैनिकों का मूल्य बढ़ने लगा। ट्रीमिंह ने भी इस अवसर को उपयुक्त समझ अपना नाम लिखा लिया, फलतः ट्रीमिंह का शत्रुओं के गुप्तचरों से किंतु छूटा और वह फौज में भर्ती कर लिया गया। यह कहा जाता है कि ट्रीमिंह अंग्रेजी बोल जानता था, इसलिये वह युद्ध में जाने के पहले ही पूर्वेदार बना दिया गया। किंतु इस में सचाई नहीं कि इतनी उन्नति उस की केवल गुप्तचरी के ही कारण हुई थी। इस में बहुत कुछ हाथ उस के सर्वनियुक्त अफसर मि० हैडसन का, जो ट्रीमिंह पर बहुत प्रसन्न था।

×× ××

युद्धस्थान में एक दिन मि० हैडसन को अपनी सेना ले कर दुर्दी की पहाड़ियों पर डेरा डालने का हुक्म हुआ। मि० हैडसन ने ट्रीमिंह सहित सब तैयारी के आक्रमण शुरू किये किंतु वहां लोग नजर में न आए। उन्हों ने एक पहाड़ी पर चढ़ाई का सामना किया। ट्रीमिंह ने मि० हैडसन से कहा, "क्यों न थोड़ी सी सेना ले कर हम लोग शत्रु की खोज में घूम आवें ?"

किंतु हैडसन ने ऐसी जोखम उठाना न

ψ अलाउद्दीन जब लड़ते २ सात दिन बीत जाने पर भी दुर्ग को फतह नहीं कर सका तब हम्मीर हठी अलाउद्दीन पर "हल्ला बोल युद्ध" का क्रोध आने लगा। क्योंकि दिल्ली युद्ध में उसकी सफलता से वह तंग आ चुका था, केवल दुर्ग की प्रधानता थी और इसी लिये दिनों का काम महीनों में होता था। अतः

(४) - ३५.

(८१)

दोनों ही दल तो बहुत देखने पड़े थे किंतु इन्होंने अपने बल दुल्ही दिखा दिया था। दोनों ने अच्छी ही बहादुरी की थी। किंतु दोनों ही मनुष्य दीनता से बड़ी शिक्षा दे। अतः इसलिये इन आपत्तियों ने दोनों को नया दल दिया, वहां बुद्धिमान भी बना दिया था। यह इन दोनों ही का दल था कि आज वह देखने में युवक किंतु विद्वानों में गिने व्यक्ति थे और बड़े विद्वान उसे विद्या शीघ्र मानते थे। इसी से अंग्रेजी और अरबी का अच्छा अभ्यास हो गया था। अपनी भाषा में भी वह काम भर लिख पढ़ लेता था, तथापि वह दूसरों पत्रों का सम्पादक था। एवं देश विदेशों से आने वाले विद्वान प्रायः उसी से मिलने आते थे। अधिकारी भी अवसर से उसे [illegible] में Black sheep के नाम से प्रसिद्ध था।

अकस्मात् महा युद्ध छिड़ गया और दोनों ही दल में बिना ही देखे भाले एक दूसरे का उत्तर दिये बिना रहने का साहस न हुआ। दोनों ही के मन में एक दुनकी बजा करती थी। मैं बोला "मेरी एक सलाह है, अगर पसन्द आ जाये तो दो।" "कहो न! जल्दी।"

दुनकी - "पहले मुझे अकेले को कुछ कसरत दे लेने दीजिये। फिर मैं महल दल तक हमला किया जाय।"

दोनों को यह प्रस्ताव बहुत पसंद आया। कारण कि एक आदमी की दो जीवन थी। किंतु दोनों की इच्छा अपने साथी को अकेला जाने देने की न हुई। वह बोला, "अच्छा, मैं और तुम दोनों चलें।" दुनकी का चेहरा खिल उठा। किंतु यह हैजान बेकाबू न हुआ।

अन्त में दुनकी ने तुर्की सिपाहियों की पोशाक पहनी और घोड़े से बहुत निकला। बाघ दगने के समय वह घोड़े को सेट लाता और दुनकी बाघ दगने तक घोड़ा आगे दौड़ लेता। इसी तरह घोड़ों के प्रयत्न करने पर वह घोड़े के निकट पहुंच गया। फिर पहुंच कर घोड़ों को रोक पड़ा एवं और अपना दांव देखने लगा।

दोनों ओर से दुनकी की ओर से चलाई गयीं अनेकों गोलियों के मारे प्राण लाए, परन्तु वह बुद्धिमान दोनों ही [illegible] देख कर बिजली की

वे उपयुक्त अवसर की राह देखने लगे। धीरे रात्रि हो गई। सभी ओर की दिशाओं से सिंह गीदड़ी वर्षा होने लगी और वह सिंहासन एक मृत्यु को कुचलने के काबिल हो गया। यह बात भी थी। दिन में प्रत्येक शत्रु की गतिविधि दृष्टि ओझल था, किंतु रात में तो आखिलेंद्री ही दिखा होती समर्थ थी। इस में संदेह नहीं कि इस समय भी वह जाहिर से काम लिया जा रहा था, किंतु फिर भी एक-एक है।

इसी समय ही प्रहरी वेशधारी ने टैरी-डेन से पूछा :-

"आज के प्रयत्नों का क्या फल हुआ?" N.P. किंतु डैरी-डेन क्या उत्तर दे? उसे लज्जित होते हुए यही उत्तर देना पड़ा कि "अभी कुछ नहीं कह सकते हैं। शत्रु दृढ़ता से सामना कर रहा है।"

उत्तर तो देदिया किंतु डैरी-डेन को शांति नहीं मिली। उसने ट्रीसिंह के कुछ और बातें कहीं। ट्रीसिंह ने फिर वही प्रस्ताव दिया, किंतु डैरी-डेन [illegible] घायल हो ही गए थे, शेष सैनिकों को अपनी ओर मिलाने बाहर निकले। इसी समय ट्रीसिंह उन पर टूट पड़ा। फिर क्या था, थोड़ी ही देर के संग्राम में लोई पर ट्रीसिंह की कम्पनी का अधिकार हो गया। सिर डैरी-डेन प्रत्याक्रमण की रक्षा की व्यवस्था करने लगे और ट्रीसिंह लोई के भीतर घुसा।

किंतु भीतर की अवस्था देखकर उसका हृदय कांप उठा। चारों ओर घायल व्यक्ति पड़े हुए थे। किसी का हाथ उड़ गया था किसी की टांग। किसी की आंख फूट गई थी किसी की कोहनी। कई अब भी जीवित थे और उन्होंने ज्यों ट्रीसिंह को आते देखा, डरावनी ऐसे चिल्लाने लगे मानो वह कृतान्त हो। उन के मुख मंडल विवर्ण हो उठे और वे भीत मृगी की दृष्टि से उस की ओर देखने लगे। ट्रीसिंह को पहले मनुष्य ने [illegible] के देख कर इतने भयभीत होने पर आश्चर्य हुआ, किंतु तत्काल ही जब उसे अपने अभी कुछ क्षण पहले किये हुए कृत्य का और नित्य बीसियों या पचासियों के प्रति विनेताओं को [illegible] का ध्यान आया तब उस का आश्चर्य एक दम जाता रहा। उसे मुंह पर एक प्रकार की घृणा सी हो उठी। उसने उन को आश्वासन दिया कि अब उन के साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं होगा।

गाइडेंड लाइट नामक दो गुप्तचर आतीथे। कुछ दीने
धीरे २ इसी नामके पहाड़ों तक अदृश्य अवस्थामें
देख ली। उसे मालूम हो गया कि लोई में आदमि-
यों की संख्या बहुत कम है। वे सशस्त्र नगरके दो पहरे
अपने २ हथियार लिए हुए हैं। लोई की पूर्व दिशा
के नीचे २० की जगह ३० दुश्मन आदमी कैद
अवस्था में है हैं। अतः वह पेड़ों २ आगे
बढ़ने लगा और थोड़ी देरमें लोई के पीछे
जा पहुंचा।

उधर इरीलिंड लोई की दीवाल पर कान लगाए
पड़ा था। अकस्मात एक बार तेजी दीवार में
ओ दूसरे कैद करने वाले सैनिकों के
बीच में आ कूदा। दोनों अज्ञात शत्रु
को देखे डरे। एक ने धूल उड़ाने के साथ प्रकाश
फैला दी जिससे निकिड तमछा गया। फायर बंद
हो गई। इरीलिंड ने अपनी दमकती तलवार
को दिखा।

इसी बीच में वे दो सैनिक ने [illegible] था। उसने कहा, "दोस्तो! मैं जीवित रहा तो
अवश्य उसे पूर्ण करूंगा।"

घायल ने कहा, "आप बड़े सज्जन हैं। मैं एक गरीब आदमी हूं। कुर्दिस्तान में अजा-
नामक मेरा ग्राम है।"

इरीलिंड को अपनी पूर्व अवस्था का स्मरण हो
आया और उसकी आंखों में आंसू आ गए।
घायल ने कहा, "यहां मेरी दो औरतें हैं। चार
बच्चे हैं। एक मां है। एक बुआ है।"
इरीलिंड के आंसू बहुत चले। उसे अपने कृत्य
पर पश्चात्ताप होने लगा।
घायल कहता चला, "उफ! उन सब का दम घुट
जाएगा। मैं अकेला था। भाई
जान! सच मानना, यह बात है हम लोग एक
दल लोगों को लूटने के लिए हैं!"

इरीलिंड का हृदय विह्वल हो उठा। उसका
रथ बहुत जल्दी २ चलने लगा। वह सोचने लगा।
"हाय! न जाने कितने ऐसे ही दुखी इन गुफाओं में डाल
दे गए होंगे? आखिर सिपाही पर कैसे चलेगी
में दोष अभी है? कितने ऐसे भाई के कारण घुलता
है? ये तो सब गरीब ही हैं। एक गरीब दूसरे को
मारता है। वह उसके बच्चों को अनाथ बनाता है

इलीसिंह की बात सुन कर घायल की आंखों में कृतज्ञता झलक उठी। इलीसिंह प्रत्येक से निबट लेने पर घायलों को देखते जाते कि उन में से कौन २ चिकित्सा से बचने योग्य हैं। इतने में एक घायल ने उन से पानी माँगा। इलीसिंह ने अपनी बुक्की में से उसे पानी पिलाया। घायल ने लेकर हाथ जोड़ कर पूछा,

"आप हिंदुस्थानी हैं?"

इलीसिंह: "हाँ, मैं हिंदुस्थानी हूं! क्यों?"

घायल - "आप दुश्मन हैं, तो भी हिंदुस्थानी हैं। इसलिये हम आप को भला चाहते हैं। मैं आप को एक काम सौंपना चाहता हूं। क्या मरते हुए आदमी की एक इच्छा आप पूरी करेंगे?"

इलीसिंह इस विश्वास पर गद्गद हो उठा। उसे प्राचीन भारतीय युद्धों का स्मरण हो आया, जब युद्ध शत्रुता के लिये नहीं, केवल धर्म के लिये होते थे। एक दिन लड़ने के बाद दोनों पक्ष के योद्धा साथ २ बैठते, खाते-पीते, और बोलते थे। कोई किसी को शत्रु की दृष्टि से नहीं देखता था।

इलीसिंह ने कहा, "हां, कहो! कहो!"

घायल बोला, "मुझे इतने महीने की तनख्वाह अभी कल ही मिली थी। मैं ने उसे भी नहीं भिजवाया। कुछ और रकम थी। सोचा था कि परसों भेजूंगा। लेकिन ... तो, तुम यह रुपया मेरे बाल बच्चों को पहुंचवा देना। यह पता लिख लो।"

इलीसिंह ने कागज पेंसिल निकाल कर पता लिखा और रकम सम्हाली। फिर दोनों हाथ जोड़ने पर घायल ने कहा, "अच्छा, अब नमस्ते दो...!"

इलीसिंह ने उस के हाथ को हाथ में ले कर कहा "मैं अपने घर के बारे में सोचने के पहले इसे पूरा कर दूंगा!"

घायल बोला, "अच्छा बिदा! खुदा तुम को इस नेकी का बदला देगा। अब मैं आराम से मरूंगा!" कह कर उस ने अपनी दर्द भरी छाती से बँधा कपड़ा खोल डाला। लेकिन खून बहुत निकला और थोड़ी ही देर में घायल के प्राण पखेरू उड़ गए। प्राण उड़ गए। किंतु उस के मुख पर सुख की छाया थी। [illegible] को अस्पताल पहुंचाने की व्यवस्था की। किंतु वह [illegible]

वह उसके कीचड़ दो। परिणाम में दोनों ही फूली होते हैं। किंतु यह पागलपन क्यों है?" कि. एम. ने धीमे से कहा, "तो भाई! कि तुम क्यों यहाँ मरने के लिए आए? उफ़! अब उनका क्या होगा?" गोपाल की आँखों में भी आँसू आ गए। बोला, "कुछ जाने क्या होगा! न आता तो भी क्या होता? यहाँ की मज़दूरी से गुज़र न चलता था। इधर तो सलाह ज़्यादा मिलती थी। कि ब्यूट के माल का लालच था। ओह! वे मेरी कितनी उत्सुकता से बाट देखते होंगे!" कहते २ गोपाल रो ले पड़ा!

ड्रीसिंह ने भी शोक का विराम न रहा, किंतु गोपाल को धैर्य दिलाने के लिये उसने अपने को किया और कहा, "कुछ चिन्ता नहीं, भाई! तुम अच्छे हो जाओगे मैं तुम्हारे इलाज की विशेष व्यवस्था कर दूंगा!"

गोपाल बोला, "नहीं विलियम! मैं अब नहीं बचूंगा। मेरे फेफड़े में गोली आ पार हो चुकी है। अब तक भी, मैं ने न जाने कितने दम को काँप (काबू) है, इस लिये बचा हुआ है। अब [illegible] कपड़े को उसने ड्रीसिंह के हाथ में दे दिया। ड्रीसिंह ने एक दर्दीली उठाया, जैसे सीते से जागृत हुआ हो। हेडसन ने कहा, "तुम क्या बैठे हो? क्या मामला है?"

किंतु ड्रीसिंह ने कहा माने उस की नब्ज़ जाँच-पुनी को दे कहा, "उफ़! मैं तो भूल गया था!" हेडसन चढ़ाया। बोला, "बात क्या है? कुछ लाइ २ कहो!"

इस का सुनते ड्रीसिंह होश में आया। वह बोला, "कहूँ? क्या कहूँ? मैं तो कहता हूँ! मैं कुछ नहीं कहना चाहता!" कि. हेडसन ने देखा कि आज ड्रीसिंह का स्वभाव ही नहीं उस की मुखाकृति भी बदल गई है। वे मर्माहत से हो कर नहीं रह गए। बोले "आखिर बात क्या है?"

ड्रीसिंह ने ताली [illegible] को कहा, "क्या ऐसे युद्ध में भाग लेना ही पाप नहीं है? क्या संसार में पहले ही दुखी की कमी है, जो हम कि उसे और बढ़ाने [illegible]

हेडसन - "किंतु यह तो [illegible] का प्रश्न है।"

ड्रीसिंह - "[illegible] हम ने व्यापार बंद है। क्या ये लोग इंगलैंड पर चढ़ आए थे?"

हेडसन - "नहीं, वे नहीं आए थे, किंतु इंगलैंड

उपरोक्त लोई छिन लाले न अंग्रेज अधिक लेने दो तुर्की दूती [illegible] कीलेल ने भी सिर तोड़ प्रयत्न किया किंतु मि० हैंडसन की तत्परता के सामने उन की कुछ न चली। छुं, मि० हैंडसन को भी काम लोई की ओर पर दौड़ते हुए पड़ा।

किंतु हैंडसन का चित्त ठिकाने न था। यहां आने के बाद से ही उसने हरीसिंह को न देखा था। उसने कई का सिपाहियों से पूछा भी तो, यही उत्तर मिला कि वह लोई के अन्दर है। किंतु लोई में तो रात से बहुत लोग आ गए हैं, वह उस की समझ में न आता था। आखिर प्रायः तीन बजे वह लोई से चीता गया। देखा, हरीसिंह एक पत्थर हाथ में लिये और एक गढ़ी सोढ़ में किसी पत्थर की मूर्ति की तरह बैठा, पास पड़े एक खाली की ओर देख रहा है। हैंडसन कुछ मिनट खड़े रहे किंतु हरीसिंह ने अपनी दृष्टि न हटाई। आखिर हैंडसन ने आवाज दी, किंतु व्यर्थ!

[illegible]

दो उठाते ही कहा, "हरीसिंह, ये क्या तेरे?"

हरीसिंह - "नहीं हो सकते तो उन्हें ही लड़ने देना चाहिये। हम इस काम के आगे क्यों बढ़ें? आप तो हमारे हैं। क्या यही हिंसा का प्रेम का देश है?"

हैंडसन - "हमारे तो हम कहते आ रहे हैं हरीसिंह! हिंसा के आदर्श का कौन चलाता है। उस आदर्श का चलाते तो अनगिनतों का नाम ही क्यों सुनाई देता?"

हरीसिंह - तो कि चलिये। हम लोग तो हमारे [illegible] काम को अलविदा कहें!"

हैंडसन - अलविदा! यह कैसे हो सकता है हरीसिंह?"

हरीसिंह - अच्छी तरह हो सकता है साहब!

हैंडसन - कैसे? जानते हो, अब इसका दुनिया में क्या होगा। तुम को अपनी जान से हाथ धोना पड़ेगा।

हरीसिंह - कोई चिन्ता नहीं साहब। आप ने आत्म से उस निर्णय किया, इसलिये आप इस बात का अनुमान नहीं कर सकते किंतु मैं यहां से एक २ कार्ड से कितनी हिंसा की कितने बच्चे दीन के लिये हैं जानती

की प्रभुता का अपहरण हो तो दूसरे देशों को हस्तक्षेप करना
चाहिए। उसे क्रायम रखना भी तो राष्ट्रीय कार्य है?"
हरीसिंह - "तब तो राष्ट्रसंघ का नहीं राष्ट्रीय लूट की
सत्ता का प्रश्न है। कि यह लूट सारे राष्ट्र को मिलती
है क्या? क्या यह मुट्ठी भर धनिकों और शासकों
का प्रश्न नहीं है?
हैण्डसन एक तत्त्वनिष्ठ अंग्रेज थे। वे इस कटाक्ष को
अनदेखा न कर सके! वे बोले, "यह सच्चाई
है, किंतु जब युद्ध छिड़ गया है तब तो भागना
या मरना - दो ही बातें हो सकती हैं!"
हरीसिंह - "क्यों? सहयोगार्थ भी तो हैं! एक पक्ष
दूसरे के न्याय्य अधिकारों को मान ले
और प्रत्येक अपनी आवश्यकताएँ अपने देश
से पूरी करे" इस आधार पर युद्ध बंद करने
की घोषणा की है तो युद्ध ने टाल बंद हो
सकता है, और यदि कोई इस बात को न
माने तो उसके विरुद्ध युद्ध करना विहित
हो जा सकता है!"
हैण्डसन - किंतु स्वाभिमान के दीवाने ऐसा होने

दिये हैं अनुभव हुआ है और इसी लिये हमारे पक्ष ने ही मेरी आँखें खोल दी हैं। मैं अन्य प्राणियों को इस सर्वनाश का शिकार बनाने की अपेक्षा अपने प्राण दे देने का कार्य श्रेष्ठ समझता हूँ।"

हॉडसन ने हीरसिंह को गले से लगा लिया और कहा, "हीरसिंह तुम्हारे हृदय में प्रेम नहीं है। मैं स्वयं धार्मिक जीवन बिताने का कभी से विचार ही रहा हूँ। किंतु अभी युद्ध समाप्त होने तक अपना विचार स्थगित रखा है। मेरा मन यही कहता है कि प्राण रक्षा के लिए कार्य करो तो पूर्ण रूप से ही अधर्म है। आखिर प्राचीन आर्य भी तो युद्ध करते थे?"

हीरसिंह बोला "साहब! प्रथम तो प्राचीन होने से धर्म पुण्य नहीं हो जाता। कि प्राचीन युद्ध शैली और आज की शैली में कितना अन्तर है? उस समय सामने की सेना और सामने शिक्षित होते ही लड़ा जाता था। युद्ध के ~~समय~~ ~~नहीं~~ ~~निहत्थे~~ दोनों होते थे। इसीलिये सिपाही के जीवन युद्ध के बाद एक पत्नी सिखते जुलते थे,

हॉडसन - हाँ, यह तो मैं ने भी पढ़ा है।

हीरसिंह - कि उस समय, जो जिस शस्त्रास्त्र को चलाने और बचाने जानता था उसी के बहु शस्त्रास्त्र चलाया जा सकता था। युद्ध में छल कपट से काम न लिया जाता था। तटस्थ, रोगी, आर्त, पलायित न मारा जाता था। आज की युद्ध कला तो विकराल है। यहाँ तो छिप कर मारना, धोखा देना, बमवर्षक लोकों से, विमान भेदों से, समुद्र में डुबाकर, आगलगा कर एकतरफा से शत्रु के धन जन का नाश करना और तटस्थ सैनिक सब को मारना विहित है। यह तो एकतरफा हिंसा गया बीता है।"

हॉडसन - किंतु अबतो हम ने तमिलियों को जीत लिया है।"

हीरसिंह बोला, "मि० हॉडसन! कैसी दृष्टि से तो भूल का जहाँ ज्ञान हो जाय, उसे वहीं सुधार लेना चाहिये। अवश्य ही आप के कहने के अनुसार इस में हानि की सम्भावना है। किंतु मैं उस के लिये तत्पर हूँ।"

धीरे-2 सदन के विरोधियों को कुछ लोभ-मत से, कुछ से और कुछ अपने हुक्म के टोंचने से अपनी मुट्ठी में आते हुए से वे अपने प्रयत्न से चिंतित हुए। उनकी संख्या भी बढ़ी और फलतः सदन का कार्य-संचालन अच्छा चलने लगा।

किंतु पुलिस इतने पर न हुई। उसने अपने एक आदमी को दिल्ली बढ़ाने के सदन में प्रविष्ट करा दिया। यह व्यक्ति सदन में रहते तन-मन से काम करने लगा कि किसी को उस पर संदेह ही न हो सकता था। किंतु साथ ही वह सदन के कार्यकर्ताओं और विधायकों में असंतोष-विद्रोह आदि के भावों को प्रश्रय देने लगा। यही नहीं, कुछ उन के हृदय में पहले से विद्यमान यह शांति लोभ का स्वयं यही उद्देश्य है, किंतु वे अपने मुंह से ऐसा नहीं कहना चाहते।

सदन के लोग पुलिस की फलतः सर्वत्र-मैत्र के चिह्न तो देख ही थे, उन्हें इन बातों पर विश्वास नहीं होने लगा और अविश्वास होने लगी। इधर उसने दलबंदी चलाई। वह सदन के कार्यकर्ताओं में फूट डालने की थी। उसने क्रमशः एक के विरुद्ध दूसरे के मन में भेद-बुद्धि उत्पन्न करने की चेष्टा की।

× ×

× ×

× ×

एक दिन शांतिलाल सदन के प्रायः एक व्यक्ति को लेकर गया था सदन की निगरानी के लिये के तीन आदमियों के साथ अकेला एक कार्यालय में था। शांतिलाल के इस अवसर के लाभ उठाने लगा। शांतिलाल की ड्रेस, कोटी और कागजों को शांतिलाल के हाथ के लिये कुछ से दागदार पत्र मिले। अंत में उसने शांतिलाल के हस्ताक्षरों को लेकर एक छोटी सी चिट्ठी बनाई, जिसमें शांतिलाल को दिल्ली षड्यंत्र में शामिल होने संबंधित दिया गया था।

चिट्ठी तो बहुत सहज ही बन गई। किंतु उसने देह को उसे असली पत्रों से मिला कर देखा और जब उसे संतोष हो गया तो उसे ड्रेस में एवं जेबों का तो ताला लगा दिया।

× ×

× ×

× ×

दो बज चुके थे। शांतिलाल उस के कमरे में और उस के साथी नीचे तो थे। अकस्मात

कार्यालय के नीचे के भाग में आग लगी गई। नीचे सोने वाले व्यक्ति जागे और जल्दी २ जो जो वस्तु हाथ पड़ी उसे बाहर निकालने लगे। किंतु अग्नि ने बहुत जल्दी विकट रूप धारण किया और ऊपर की मंजिल तक लपटें उठने लगीं। किसी को अब भी न दिखा। उन्हें तो किसी को ध्यान भी न था।

बहुत शान्तिलाल अपने दल-बल सहित आ पहुँचा। आग बुझाने की चेष्टा शुरू हुई। इतने में कुछ पड़ोसी भी आ गए। किंतु ऊपर जाने में आने की सीढ़ी से बाहर निकलने की गई थी।

अब तो शान्तिलाल की आँखें खुलीं। किंतु देखा कि निकलने के मार्ग अग्नि द्वारा रुद्ध हो चुके हैं। चारों ओर धुंआ छाया हुआ है और उसके बीच में प्रलय की शिखा की तरह भयंकर अग्नि की लपटें लपलपा रही हैं। मार्ग पाने को वह चारों ओर दौड़ा, किंतु सिवा गया उसी की अवस्था थी। वह घबरा उठा। नीचे से शोर आशा न हो गई। किंतु इसी समय उसे दीवाल की एक खिड़की न पड़ी जिस में धुंए का तूफान था वह दौड़ कर उसके पास पहुँचा। खिड़की दो हाथ अवश्य ही उसके आस-पास अग्नि न थी, किंतु नीचे बहुत लोगों से भरा हुआ था। यूं, हमें है शान्तिलाल आदि और स्पष्ट दिखाई देते थे।

शान्तिलाल ने चिल्लाना शुरू किया। शान्तिलाल का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। अवश्य वह समझे या कि वहाँ में कोई नहीं है। अब शान्तिलाल को देख कर उसका हृदय अस्थिर हो उठा। किंतु उसे जाने का उपाय न था। अग्नि ने भीषणतम रूप धारण कर लिया था। दर्शकों की छाती फटी जा रही थी। ऐसी अवस्था में कौन प्राण खोने का साहस कर सकता था। शान्तिलाल ने एक बार आँखें चारों ओर ले जाकर की ओर देखा। एक दया उसकी दृष्टि का अर्थ समझ गई, और बोली, "शांति बाबू! अब उसे बचाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। उसे बचाने वाली स्वयं ही जाते २ नष्ट हो जाएगा।"

अब क्या अग्नि और धुंए का तांडव बढ़ता

जा रहा था। शांतिलाल अब लोगों को दिखाई नहीं दे रहा था। अचानक इसी क्षण उसे ऐसा लगा कि कोई चिल्लाने की आवाज़ कि सुनाई दी। शांतिलाल ने न सुना। उसने अपना सिर बाल्टी पानी में डाल दिया और उसे ओढ़ कर जलती हुई आग में घुस पड़ा। एक हैं हैं का शोर उठा, किंतु वे सम्हलें तब तक शांतिलाल अग्नि की लपटों में गायब हो चुका था।

x x x x x x

शांतिलाल अब लुप्त दृष्टि पहुंच गया, किंतु धुंए के सिवा कुछ दिखाई न देता था। आंखें खोलते ही काले चित्र बन जाती थीं। लपटों की गर्मी से बदन अलग जला जाता था। शांतिलाल अनुमान से ही पहले पानी के घड़ों की ओर चला, किसी से उसे एक घड़ा सिर पर रखा गया। उसने झट पर अपने पूछे हुए आदमी को कि कमरों में चलो लगाने लगा।

सहसा उसे ही हाथ किसी भारी चीज से लगी। उसने छुआ तो उसे टटोला तो लगा पड़ा कि मनुष्य ही है। तत्काल उसने उसे उठा अपने कंधे पर लिया और उसी से चारों ओर उसी तेजी से नीचे की ओर चला।

नीचे खड़े हुए लोग शांतिलाल की मृत्यु को निश्चित समझ चुके थे और वे उसके लिए आंसू बहाने शुरू कर दिये थे। एकाएक शांतिलाल अग्नि की लपटों में से निकल कर उन के बीच में आ खड़ा हुआ। किंतु अधिक बड़ा न हुआ था। अपने कंधे से लटके हुए चाचा को अलग करते ही वह अपने साथी सहित भूमि पर गिर पड़ा। लोग दौड़े। शांतिलाल को उठाया। किंतु होले बेहोश थे। शांतिलाल के भी कुछ बाल जल गए थे और हाथों पर भी कुछ ज़ख्म हो गए थे।

(८)

(८)

अस्पताल के एक कमरे में शांतिलाल दीवार से पीठ टिकाए बैठा है। राधेलाल सामने बैठा है। राधेलाल ने कहा, "शांतिलाल! तुम ने एक तुच्छ व्यक्ति के पीछे इतनी जोखिम उठाई।"

शांति०- "यह तो मेरे लिये मेरे भाग्य की बात है। साधारण व्यक्ति के लिये भी कष्ट उठाने का अवसर किस को मिलता है? मिलने पर भी कितने ऐसे लाभ उठा सकते हैं? फिर तुम तो मेरे सहकारी थे! तुम ने तो देश के लिये अपना ही आदमी खोया है।"

यह सुन कर मानो राधेलाल के मुखड़े पर विषाद की छाया ने चक्कर लगाया। वह बोला, "किंतु यदि तुम्हें यह ज्ञात होता कि वह व्यक्ति स्वार्थत्यागी और देश-प्रेमी नहीं, पक्का चोर है, तो?"

"तो भी मेरा तो कर्तव्य वही था! मनुष्य जाति एक महान कुटुम्ब है। उसमें वे बंधु भी हैं और अन्य भी। किंतु वे दोनों ही हमारे ही समान शांति के [illegible]"

"किंतु यदि आप को यह ज्ञात होता कि वह व्यक्ति आप का शत्रु है। आप की आँख के काँटे को नष्ट करने के लिये षड्यंत्र रच रहा है, तब?"

"अँ!" दाढ़ी खुजलाते हुए शांतिलाल ने कहा, "तुम ऐसी बातें क्यों करते हो राधेलाल?"

"बातें नहीं, मैं पूछता हूँ कि यदि वास्तव में ऐसा होता तब?" राधेलाल ने फिर कहा।

"तब भी मेरे कर्तव्य में तो दोष आने की आशंका न होता था। मैं कह चुका हूँ न, कि दुष्ट होने से कोई शत्रु नहीं हो जाता। [illegible] के लिये आदर्शवादिता बुरा तो मनुष्य मात्र का साधारण धर्म है।"

राधेलाल की आँखें झुक गईं। उसने अपनी जेब से एक पत्र निकाल कर शांतिलाल के हाथ में दिया। शांतिलाल उसे पढ़ कर सहसा बोला,

"यह क्या है राधेलाल? अरे तो मेरे जाने के दिन मैं ने तो कोई ऐसा वैसा पत्र नहीं लिखा।" राधेलाल बोला, "यही तो मैं कह रहा हूँ। यह मैं ने तुझे फँसाने के लिये तैयार किया था। और जिस समय तुम ने पढ़ा था तब भी मैं ने [illegible]

तुम्हारे लिये बनाए हुए हैं, देते ही हैं, कभी देते ही ~~थे~~ थे। सबसे अधिक चिन्ता ही थी। अरे तो आपने साधु से इसका कि मैं कितना अधम हूँ?"

शांतिलाल ने एक बार राधेलाल की ओर देखा, फिर कहा, "कोई हर्ज नहीं राधेलाल! जो बात अन्त में शुभ परिणाम ले आवे वह अच्छी ही होती है। हुआ ने दो विरोधियों को मित्र बना दिया, यह क्या कम है? फिर तुम हँसा क्यों रहे थे?"

स्पष्ट ताड़ी इलजाम की प्रमाणित।

"क्यों पूछा था? अभी आप को पूरी बात मालूम नहीं हुई है। मैं पुलिस का गुप्तचर हूँ।"

मुँह से शांतिलाल के मुख से किंचित् आश्चर्य का भाव प्रकट हुआ। वह बोले "गुप्तचर! फिर तुम गुप्तचर हो तो भी हम लोगों से द्वेष का कारण?"

"द्वेष? कम से कम मुझे तो नहीं था।"

"तो फिर यह कैसे हुआ?"

"स्वार्थ के लिये! आप जानते हैं, आजकल राजनैतिक मामलों से ही पुलिस को सबसे अधिक लाभ पहुँचता है।"

"फिर भी! हिंसा करना तो उचित नहीं कहा जा सकता है।"

"हूँ! यह तो हम उसी से सीखे हैं ना! जब हमारे अफसर अपने विरोधियों को फँसाने के लिये हम से बड़े बड़े झूठों और जालसाजी के काम कराते हैं, तब हम लोग अपने लाभ के लिये उन्हीं शस्त्रों का प्रयोग उन पर किसे बिना कब चूकते हैं?"

"हाँ, वैसे तो यह रोज देखने में आता है, आखिर भूखे तो सब रहते ही हैं। फिर भी कौन उस देवालय के अपने अन्न को खोना नहीं देता? फिर भी इतना भी हो सकता है, यह मुझे विश्वास न था।"

"अच्छा, अब मुझसे क्या कहते हो?"

"मैं क्या कहूँगा? मेरे लिये तो अब तुम पहले से भी अधिक विपत्ति हो गये हो। यदि तुम पुलिस से जा कहो तो मैं तुम्हें सीधा भी न छोड़ूँगा! खैर यह सब राधेलाल शांतिलाल के ~~मैं~~ ~~पिता~~ ~~जाना~~ सुख नहीं है, हितकर नहीं है, हितकर नहीं है...!"

राधेलाल शांति के मुँह से यह सुन कर आँखें फाड़ कर बोला, "अब मुझे इन चीजों की आवश्यकता नहीं है। मैं मात्र पिता-हीन अनाथ लगती हूँ। फिर किस लिये यह माया-मोह संग्रह करूँ?"

इसी समय सदन ने एक [illegible] कमरे में भी कदम रखा था। यहाँ नहलाने वाली थी, ~~रेवतीरानी की मालिश करने वाली। रेवतीरानी की माता ने कहा,~~ उन उल्लिखित दो स्त्रियों में से ने कहा। इसका तो पगलेपन हुई कुछ ऐसा है कि जहाँ जाती है, वहीं विपत्तियों से घेर ले जाते हैं। जहाँ जाय, कुछ न कुछ नई पे पड़ता। दूसरी स्त्री ने उसे एक धौल लगाकर कहा, "हाँ, सो तो प्रत्यक्ष देखती हूँ। देखो न कि कमरे में बच्चे की कितनी दुर्गति हो गई? किंतु माताजी, तुम लोग अब कब तक इस दुर्नीति के पंजे में लिये बैठी रहोगी?"

"तो क्या करूँ, बेटी?" वृद्धा ने कुछ चिंतित होते हुए कहा।"

"क्यों आखिर ये गरीब की छोटी जाति की नहीं जाने वाली स्त्रियाँ भी तो अकेली रहने में अपना पेट पालती हैं। फिर अपने बच्चे नहीं पाल सकतीं?"

"अपने तो पहले तो पर्दे का झगड़ा। फिर अपने को कोई काम करना नहीं आता। अधिक श्रम करने की आदत नहीं। अपने पेट की बोझी कैसे ढो सकती हैं, बेटी?"

"किंतु मुझे तो ये सब बातें असत्य प्रतीत होती हैं। ये पुरुष लोग अपनी विलासभावनाओं से प्रेरित हो हमें इस प्रकार से मोहजाल में फँसाते हैं। फिर [illegible] पछताना पड़ता है हमें। फिर हम इन बातों का अंत क्यों न करें?"

"किंतु एक चना भाड़ थोड़े ही फोड़ सकता है। हमारा काम तो उल्टा नहीं बनना होगा। अपने बीमार की आलोचना करने बैठे हो।"

"हुआ करे! आलोचना करने वाले अपने को खाने को तो देते ही नहीं, तो उन की चिंता क्यों?"

"तब?"

"मैं ने तो यही सोचा है कि आप तो यहीं हैं, इस बच्चे को भी यहीं रखें और मैं [illegible] परीक्षा को देखूँ।"

"न बेटी! आज कल के जमाने में ऐसे माहौल का परिणाम बुरा ही होता है। फिर मैं फिर इस मुई दलदल को नहीं।"

चले गए।" दद्दा की आँखों में पुत्र की स्मृति आते ही आंसू आ गए।

दूसरी स्त्री ~~दीनदयाल की पत्नी~~ ने मृत मण्डल को ~~भी~~ कोई शोक ~~का~~ कारण दिखाई दी, किंतु दूसरे ही क्षण वह समझ गई। वह बोली, "इसीलिये तो मैं ने कहा था दिखाई। मेरा विश्वास है कि यदि इसका मोक्ष उन के गंगा में न होता और हम इसके कर्म अपना पेट भरती तो न उन्हें यह छोड़ना पड़ता न दिल्ली को हम का आश्रय लेना पड़ता।"

"दद्दा ने कहा, "हां तो है ही बहू! ~~दीनदयाल~~ उनके मुंह से भी यह बात ~~एक दिन इसी से यही बात कही थी~~ मैं ने सुनी थी। किंतु क्या करती?"

"अहा! न जाने कितनी स्त्रियों को आज हमारी तरह ही अपने पति-पुत्रों को कुकर्म करने को छोड़ने को विवश होती हैं। क्या इस दोषारोपण हम लोगों को नहीं लगता?"

"हां, बेटी बड़े तो दुनिया में मुट्ठी भर हैं, अधिक तो लाखों करोड़ों हैं और उन के लिये ~~को~~ में, यही कर्म कर्मों अधिक यह अवस्था होती हुई है। पाप भी लगता ही होगा, न क्यों क्या?"

"~~क्यों~~ क्यों क्या? इस पाप का प्रायश्चित करें। आप तो मुझे आज्ञा दीजिये।"

"मैं कैसे कहूं, बेटी?"

"तो मैं तो निश्चय कर चुकी हूं माताजी। मैं अब दूसरों के गले का बोझ हो कर नहीं विशेषतः इस अवस्था में।"

"और मैं?"

"आप तो वृद्ध हैं, अब आप के श्रम नहीं देखा जाता। आप की सेवा करने को ~~मेरी~~ बहुएं हैं। इस को अकेली सम्हालने वाले की आवश्यकता है। अतः आप यहां रह सकती हैं।"

विमला उसी दिन चली गई। दद्दा चीत्कार कर रो पड़े। दूसरी स्त्रियों ने पूछा तो कह दिया, "बीत गई है!"

× × × × ×

कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस अवधि में ही सदन का विवाह भी सम्पन्न हो चुका था। उस के बाद वह और वह सहानुभूति का समुद्र उमड़ पड़ा और सदन का कार्य पूर्ववत चल निकला।

मि० हैडलन ने मिस हरीसिंह को युद्ध में आगे बढ़ने देने दिया। कुछ दिन के "प्राइवेट सेक्रेटरी" का काम करने लगा। (उपरोक्त घटना की उन्हीं दोनों के बीच में ही।

उधर हरीसिंह ने उक्त मोर्चे को लेने में जो वीरता दिखाई थी उस की प्रशंसा की रिपोर्टें देकर उसने पुल बाँध दिये। फलतः सर्दी इन्हीं के हरीसिंह के नाम की बड़ी प्रतिष्ठा हो गई और उसे दे दिये युद्ध के अन्त में पदक की नहीं, सोने की जंजीर निश्चय हुआ। इस के कुछ समय पश्चात् मि० हैडलन ने अपने और हरीसिंह के लिये अकेले भोजन की छुट्टी ली और दोनों इंगलैंड आए। किंतु आगे वर्ष का मार्च लंदन में था, अतः वह आगे न आ सका। हां, पत्र उसने दो तीन दिये किंतु कोई उत्तर न मिला।

xx xx xx

निठल्ले बैठे रहने से हरीसिंह को अनेक दुश्चिंताएं आ घेरती थीं। कभी घर की, कभी अपनी शारीरिक की और कभी युद्ध की स्थिति जागृत हो उठती थी। अतः उस ने लन्दन में घूमना और वहां के जीवन से परिचय प्राप्त करना आरम्भ किया। बड़े बड़ों की कोठी, सिनेमा, थियेटर, एल्बर्ट हाल और अजायबघरों, मनोमोहक बाग-बगीचे और विभिन्न एवं विविध-भांति के गृहों की सैर करने लगा। यदा कदा कुछ लोगों से उस की भेंट भी हो जाती।

एक दिन वह ट्राफ़ाल्गर पार्क में एक बेंच पर बैठा था। सिंहासन हरी गोरी स्त्री पुरुषों के युग उस के भिन्न २ भागों में इधर उधर बातें करते घूम रहे थे और कितने ही बैठे थे। हरीसिंह सोच रहा था, एक यह देश है और एक हमारा देश है। यहां एक मनुष्य तक इन स्थानों और पुल साधनों की व्यवस्था में कितना ध्यान रखता है और वहां गरीब हुलों का ठेकेदार माना जाता है। यह प्रबंध की त्रुटि, कार्य और योग्यता नहीं देने की बाधा है। वहां इन बातों की उपयुक्तता अपने प्रयोग में लाई ही नहीं जाती।" इसी समय एक दीर्घ काय युवक अपने सिर से टोप उतार कर और धीरे २ आकर उस बेंच पर बैठ गया। हरीसिंह ने देखा वह कोई [illegible]

– "हाँ मैं हिंदुस्थानी हूं!"

"आपने हिंदुस्थान क्यों छोड़ा?"

"प्राय: साढ़े चार वर्ष होगए!"

"साढ़े चार वर्ष? तबसे यहीं हो?"

"नहीं, मुझे धोखा देकर फ्रिंच कुलियों के भर्ती के भेज दिया गया था। वहां से मैं ने युद्ध में जाने को अपना नाम दिया और अब प्राय: डेढ़ साल युद्ध में रह कर यहां आया हूं।"

"आह! ग़रीबों की तरफ़ जाकर यही हालत है! आप के माता-पिता हैं?"

"नहीं! माता है। एक भाई है। भौजाई है और एक भतीजा है।"

"अच्छा, आपने युद्ध में जाने को अपना नाम क्यों दिया था? आप जानते हैं यह युद्ध क्यों लड़ा जा रहा है?"

"मैं ने तो अपना नाम केवल शत-प्रतिशत अपना पीछा छुड़ाने को दिया था, और युद्ध का कारण तो सभी जानते हैं। बहुतों इन देशों की व्यापारिक-प्रधानता का है।"

"नहीं, व्यापारिक प्रधानता का ही नहीं, एंग्लो प्रधानता का भी है।"

"कुछ स्पष्ट कर देंगे?"

"स्पष्ट ही कहता हूं। योरोप के श्वेत चमड़ी वाले अपने को अन्य जातियों पर राज्य करने के दावी दार जानते हैं और एशिया वाले बराबरी का दर्जा चाहते हैं। बस, यही इस युद्ध की जड़ है।"

"और आप भी एंग्लो सैक्सन नहीं हैं?"

"बिल्कुल नहीं!"

"तो फिर आपको सैनिक तो नहीं कहा जा सकता?"

"मैं सैनिक नहीं के बराबर हूं। किसी अधिकतर तो भारत और एशिया के दूसरे देशों के हैं। यहां कम से कम एक सूत्रता का तो अभाव है!"

"कैसी सूत्रता का?"

"यही कि सब यहां जाति-जाति वाले समुदाय-समुदाय लड़ रहे हैं। कोई ग़रीबों को अपने स्वार्थ के लिये नहीं इकट्ठा करता। कुछ दो, थोड़ा दो, लिखे सैनिक धोखा की आड़ में सिर्फ़ इसी को नाचने कठपुतलियां बनाया जाता है – होश कोई बातों में नहीं आता!"

"तो पहले आप दो यहां भी

"हाँ, क्यों नहीं? एक देश की तरह यहाँ भी अलग-अलग बोलने वाले लोगों को जाति-जाति खिलौना बड़े उत्साह से देते हैं। बदले में छोटे और लाभ उठाते हैं बड़े। छोटों में से जो चालाक होते उन्हें छोटे मोटे पद देकर बड़े की प्रसन्नता लेते और बाकी को धता बता देते। कुछ उन की हितैषिता का ढोंग करते भी तो उन को अपनी मुट्ठी में लेने के लिये और अधिक मूर्ख बनाने के लिये।"

"मूर्ख बनाने की भी हितैषिता हो सकती है क्या?"

"हाँ, नहीं क्यों? उदाहरण के लिये शिक्षा को ही ले लो। वे कहते हैं यह दिखाते हैं कि हम हितैषिता से प्रेरित हो उन्हें शिक्षा देते हैं, किंतु असल में उन का उद्देश्य होता है उन के मनों में हीनता के भाव पैदा कर देना। ऐसी बातों को उन का धर्म बना देना, जिससे वे पंजे से बिल्कुल ही न निकलें।"

"हाँ, यह तो, जाति क्या हमारे ही देश के लिये है लागू है। हमारे यहाँ भी अधिकतर विद्वानों की जड़ अंग्रेजों द्वारा स्थापित शिक्षा प्रणाली ही कटाई जाती है।"

"कटाई क्या जाती है, है ही। नहीं हमारे यहाँ देखो ना! पुस्तकों, समाचार पत्रों और संस्थाओं आदि सब साधनों को अपनी मुट्ठी में लेने और अपने मतलब की बातों के प्रचार करने का प्रयत्न किया जाता है।"

"यह तो इसी से स्पष्ट है कि मैं आजतक यह नहीं जान सका कि यह ईसाइयत - योरोप की श्रेष्ठता - अच्छता का ढोंग है। हाँ क्या, कदाचित ही कोई जानता हो, अन्यथा शायद ही आधे भी शिक्षित लोग में दास हों।"

"यही तो बात है। तभी तो आप लोगों के यहाँ इतनी अधिक संख्या में इसे सिखाते हैं।"

"हमारे यहाँ से सिखने का एक और भी कारण है।"

"वह क्या?"

"वह यह कि हमारे यहाँ से अच्छी तो मोटा-झोटा भी आजकल नहीं सिखता और इस लिये उनके लिये कथा ही धर्म-ग्रंथ बोलने वाले हैं।"

इसीसमय कुछ हल्ला गुल्ला सुनाई दिया। इसलिये ने पूछा, "यह क्या है?"

"युद्धविरोधी प्रदर्शन है, आओ इधर से चलें।"

उस ने आगे बढ़ा इसलिये भी [illegible]
देखते थोड़ी दूर पर [illegible]

(८)

जबूतरे पर खड़े हो कर हरीसिंह ने कहा, "आप हाल ही में बताइये।" लाला कालू, "मुझे 'ओल्ड मार्टिन' कहते हैं।" इतने में जबूतरे पर बूढ़ा आ पहुंचा। उसकी दाढ़ी लम्बी थी। उसके आगे बैंड बाजा था। उस के पीछे अलग २ संस्थाओं के लोग अपने २ झण्डे और तोरण लिये हुए चल रहे थे और आठ पांच जनसमूह की भीड़ लगी थी। बीच २ में कोई २ दल युद्ध विरोधी संगीत भी गाता जाता था। सैकड़ों प्रकार के मोटे बड़े २ अक्षरों में बड़ी २ तख्तियों पर लिखे हुए थे। किसी पर लिखा था :-

"युद्ध हत्या है" और युद्ध में आगे नरक पाप है।" और पर लिखा था :-

"हम कैसा साम्राज्य चाहते हैं पशु साम्राज्य नहीं।"

"सैनिको! हत्या करने वाली सेनाओं में भर्ती होने से इंकार कर दो!"

"स्वाधिकि के कहने में आकर अपने भाइयों के गले पर छुरी मत चलाओ!"

"दुश्मन के लिये जो कहे जाने वाले भी तुम्हारी तरह ग़रीब हैं, और उन के स्त्री बच्चे भी उतनी तरह उन के लिये अनाथ होंगे जितने तुम्हारे होवेंगे।"

"ओ किस के लिये लड़ते हो? तुम्हारे भाग्य में तो हत्या कर देने की बड़ी ग़रीबी है!"

"युद्ध ही करना है तो युद्ध करने वालों से फिरो।"

"दुश्मन कौन है? युद्ध करने वाले। स्वार्थी।"

इत्यादि सैकड़ों प्रकार के मोटो थे। इन के सिवाय संस्थाओं के नामों के कोई अलग झंडे अलग थे। कितनी ही संस्थाओं के लोगों ने मूक प्रदर्शन की विशेष प्रथा की थी। बीच २ में जय-घोष भी होते जाते थे। हरीसिंह को लाले हनीफ बादल गर्ज उठता था :-

"विश्वबन्धुत्व की जय!"

"मनुष्य के भ्रातृत्व की जय!"

"जन एकता की जय!"

मार्टिन ने हरीसिंह को युद्ध के दर्शन का अधिकारी आसान किया। "यह दर्शन [illegible] है। [illegible] है। यह [illegible] के [illegible]

कार्यालयों का यूनिफार्म है। यह "इंडीविजुअल यूनिफार्म है और यह "इकनॉमिक असोशियेशन" का प्रतिनिधित्व है। यह तो और ढंग के यूनिफार्म के कपड़े हैं और ये पुलिस यूनिफार्म के!"

पुलिस यूनिफार्म का नाम सुन कर ट्रीसिंड कुछ चौंका। वह बोला "पुलिस और क्लर्क भी ऐसे आंदोलनों में भाग लेते हैं क्या?"

मार्टिन - "हां, पुलिस, क्लर्क - ही क्या तकनीकी कामों के अधिकतर तबके के यूनियन हैं। पहले एक आते तक यहां भी तकनीकी आदमी अपने को जनता से अलग समझते थे और इसी बात से फायदा उठा एक को दूसरे से भिड़ा देती थी।"

"और अब?"

"अब सब समझने लग गए हैं कि संसार में गरीब अमीर के दो ही मोटे मुख्य हैं और सब मोटे हैं और इस लिये छोटे और गरीब कहे जाने वाले सब श्रेणी के लोगों को एक हो कर काम करना चाहिये।"

"तो तकनीकी ने इस में बाधा नहीं डाली?"

"बाधा तो भारी डाली, किंतु मनुष्य ऐसे से थोड़े ही रुकता है। जब तक लोकतंत्र में थे तब तक उन की चाल चल गई। जब समझ गए तब बाधा क्या दाती?"

"अब सब मिल कर काम होते हैं?"

"हां, अब तो सब एक दूसरे को सहायता देते हैं और उसी का यह फल है कि यहां गरीब से गरीब को शिक्षा, स्वास्थ्य और समान व्यवहार आदि की सुविधाएं मिली ही हैं, एवं इतनी स्वतंत्रता है!"

"इसी यहां तो कदाचित् ही कोई [illegible] करने वाला रह गया है!"

"अब तो तुम्हें यहां भी अवश्य बदल गई है। गांधी का नाम तो तुम ने सुना होगा?"

"हां, सुना तो है। मैं आफ्रिका से कुछ पढ़ के तो उन के नाम की बड़ी धूम मची थी।"

"तुम ने उन की शिक्षाएं पढ़ी हैं?"

"नहीं, तब तो मैं इन बातों को समझता ही कहां था? अब लन्दन में लोगों को ले के दर्शन शास्त्र से अवकाश ही कहां [illegible]"

"तो तुम हो" कंग हेंड्रिक्स"

चाहिये।"

"अच्छी बात है, देखूंगा।"

दो ही बातें करते-करते जलपान समाप्त हो गया। दिन भी अस्त होने वाला था। अतः ड्रीमिंड ने अपने ताश्री को उन की बहुमूल्य बातों के लिये धन्यवाद दे कर अलविदा ली। मार्टिन ने अपने दोनों हाथ मिलाये। वह बोला, "आई! हैं तो आखिर हम आदमी ही! एक ईश्वर ही जानता है, यह केवल भ्रम का पर्दा है, जो हमें पृथक किए हुए है।"

ड्रीमिंड गद्गद हो उठा। बोला, "कदाचित फिर मिलने की इच्छा हो तो आप मुझे अपना पता देंगे?"

"बड़ी खुशी से।" कहते हुए मार्टिन ने अपने "इन्डिपेन्डेन्ट लेबर पार्टी" के आफिस के पते का कार्ड ड्रीमिंड को दिया। फिर कहा, "वैसे हम लोग तो नित्य इस स्थान पर भी मिल सकते हैं।"

(ख)

ड्रीमिंड को ले "मंगलदीप" के लंगर की ओर चली. और वह उसे डोरोथी की ही लाइब्रेरी में मिलेगा। अब ड्रीमिंड ने उसे पढ़ना आरम्भ किया। ये किताबें उसे बहुत पसन्द आए। अंग्रेजी था, जिस का अधिकांश समझ अंग्रेजी में लाने लगा। प्रायः शाम को घूमने के सिवाय अब वह कहीं न जाता था। हां, डोरोथी से कुछ आध्यात्मिक विषयों पर उस की बातचीत हुआ करती थी।

अकस्मात् एक दिन डोरोथी ने हंसते हुए उस से कहा:-

"ड्रीमिंड! मैं तुम्हारे लिये एक तुम्हारी लाया हूं!"

"क्या है? कहिये।"

(अरे) तुम्हें! मुझ का अंत होने वाला है और मैं अच्छे ढंग से।"

"कहते हैं? अदालतों में तो अभी कोई बात नहीं देखी।"

"अदालतों में नहीं, अभी तो गुप्त रूप से हमारी बातचीत हो रही है।"

"किस रूप में अंत होगा, कहिये।"

"विनय तो न्याय की

पुई मालूम है, इतिहास प्रत्येक देशों के युद्ध के विरुद्ध आन्दोलन हो रहा है। हिरुकुस्थान तक में लोगों ने फौज में भर्ती होने से और राजाओं ने सैनिक देने से इंकार कर दिया है।"

"राजाओं तक ने?"

"हां हां, अब युद्ध से सभी को अरुचि हो चली है!"

"अच्छा फिर?"

"फिर क्या, मोटी२ बातें जो मालूम हुई हैं, वे इस प्रकार हैं :-

१ - सातवर्ष के भीतर पृथ्वी के देशों में लगी हुई अपने राष्ट्र की पूंजी का हिसाब प्रत्येक राष्ट्र तैयार करेगा।

2 - सातवर्ष में प्रत्येक राष्ट्र अपने अधीनस्थ राष्ट्रों को अपनी इच्छानुसार अपनी शासन व्यवस्था कर लेने का अधिकार देगा।

3 - सब राष्ट्रों के शासक और शासितों के प्रतिनिधियों का एक संघ संगठित होगा और कि वर्ष के भीतर सब राष्ट्रों की सैनिक शक्ति (अनार्यों को छोड़ कर) उस के आधीन की जायगी।

४ - नशीले पदार्थों का व्यापार सर्वथा बन्द किया जायगा।

५ - अनैतिक धन्धे अवैध मान लिये जायेंगे।

६ - राष्ट्र आपस में वस्तुओं का वस्तुओं से परिवर्तन करने के सिवाय और किसी प्रकार का व्यापार न करेंगे।

७ - भोजन और वस्त्रोत्पादन में आधुनिक कलों का उपयोग बन्द कर दिया जायगा।

८ - राष्ट्रों के आपसी झगड़े पंचायत द्वारा तय होंगे।

९ - प्रत्येक देश दूसरे राष्ट्र के व्यक्तियों को समान स्वतंत्रता और सुविधाएँ देने को बाध्य होगा।

१० - सब प्रकार की सामुदायिक और हिंसा अविद्धि और दण्ड हटा दी जायगी।

११ - श्रेष्ठता का आधार गुण माना जायगा।

१२ - सब राष्ट्रों के शासन का ध्येय प्रत्येक नागरिक को शासन अपने ढंग में स्वाधीन शासन, शिक्षा, शिक्षा और अधिक से अधिक आवश्यकताएँ पूर्ण करने के लिये [illegible]

ड्रीसिंड्र - "तब तो वेरा वास्तव में बड़ी भारी खुशकिस्मती है।"

"हां, ड्रीसिंड्र, यदि यह क्रीमिया बंद हो गई तो संसार वास्तव में स्वर्ग बन जायगा। सब भेद-भाव मिट जायेंगे। युद्धों का नाम न रहेगा! अब तुम बड़ी प्रसन्नता से घर जाओगे। वैसे मुझे डर था कि छुट्टी समाप्त होने पर युद्ध से चित्त हटने को क्या बहाना किया जायगा?"

"तो अब आप मोर्चे पर नहीं रहेंगे?"

"नहीं ड्रीसिंड्र! मेरी तो पहले ही इच्छा न थी। मैं कभी भी युद्ध का पक्षपाती न था। किंतु हम लोगों में अन्धाधुंधी का अवसर मिलते ही ऐसा दिमाग आते हैं कि राष्ट्रीय प्रश्नों पर विचार करते समय हम प्रायः न्याय को भूल जाते हैं।"

"किंतु मुझे तो अभी एक और काम करना है।"

"वह क्या?"

"यही, उस बुरी ही लेफ्टिनेंट को कुछ शिक्षा दे पड़ेगी।"

"वह! हां ठीक है! किंतु उस के लिये तुम्हें कुर्दिस्तान जाने की आवश्यकता न पड़ेगी।"

"क्यों?"

"अब शांति होने पर मैं उसे यहीं से उस की मातृभूमि भिजवा दूंगा।"

अनिरुद्ध सिंह का महत्व

(५४) (१९३०)

अनिरुद्ध सिंह के मित्र कौशल एक लड़की दे गए थी। इस समय वह प्रायः दो वर्ष की थी। थोड़े दिन से इस के लिये एक धाती रखी गई थी जो कहने को अपने को गूजरी बताती थी। लड़की का नाम कमला था सो ला!

एक दिन धाती लड़की को [illegible] लिये बैठी थी। उसे अनिरुद्ध सिंह की अर्धांगिनी त्रिपुरा [illegible] मुख देखी थी एक पुस्तक पढ़ रही थीं। [illegible] लड़की को [illegible] लिटा रही थी। इतने में एक दासी ने आ कर कहा, "आज तो देवी बड़ी रात गई बहू जी!"

"अच्छा!" लाला की माता ने चौंक कर कहा। "हाँ बहू जी! आज एक कुंए में एक लाश मिली है। पुलिस जाँच कर रही है।"

"पुलिस जाँच कर रही है?" लाला की माता ने कुछ जोर से प्रश्न किया। लाश की उम्र के गुण अवगुण के चित्र प्रगट होने लगे। फिर कुछ रुक कर वह बोली, "अच्छा, हीरा को भेजना। कहना कि वह किसी बहाने से बड़ा बड़ा है और जो कुछ बात हो, उस की इत्तिला भेजता है।"

दासी जाने लगी। इतने में लाला की माता ने फिर कहा, "अरी सुन! "लाला के पिता कहाँ हैं?"

दासी "कहीं हैं! तब कहीं इकट्ठे ही होंगे।"

× × × × × ×

दासी चली गई तो धाती ने कहा, "देखो बहू तो राजपूत-लड़की थी ना?"

"हाँ थी तो राजपूत की ही। अपने ही गाँव की थी। किंतु तुम उसे क्या जानो?" कुछ अतीत में जा कर लाला की माता ने प्रश्न किया।

धाती ने कहा, "मैं तो क्या जानूं, यही किसी से सुना था कि पहले लाला बहू को लिवाने के लिये उस की बिधवा मा [illegible] गई थी। उन के दोनों माँ बेटी यही रहती थीं।"

लाला की माता ने हाथ जोड़ लिये। आँखें बंद कर लीं। [illegible] को बोली, "भगवान के लिये ऐसी बात मत कहना! [illegible] देवे दुर्बुद्धि आवेगी?"

[illegible] रहस्य मिलेगा। कारण कि [illegible] आलोचना के उचित होने वाले [illegible] था। वास्तव में वह देवी सिंह के ही [illegible]

का का दी एक साल बड़ी थी। पिता के मरने पर अवश्य ही दोनों को दरिद्रता की आफेट होना पड़ा था। किंतु बीच अनिरुद्ध सिंह के यहाँ जगह मिल जाने से उन के दिन अच्छी भाँति कट रहे थे।

हाँ, एक बात अवश्य थी। यहां वे दासियों के समान रखी जाती थीं; किंतु पिछले दिनों से वह अवस्था भी बदल गई थी। ऐसी अवस्था में दोनों का बेटियों का एक सिपाही के जीते ही आत्मघात कर लेना संदेह पैदा करने वाली बात भी थी। धाय ने यही सुना था।

इसी लिये रहस्य भेद करने के विचार से धाय ने कहा :-

"किंतु इस में वे क्या करें? उन का अकेले का दोष थोड़े ही था!"

मालकीन बोली, "अकेले ही का नहीं तो और किस का था। वे तो दोनों को बेटी बहुत चाहती थीं! इन्हों ने ही नहीं माना!"

"किंतु स्त्री की इच्छा न हो तो कौन उसे विवश कर सकता है?"

"विवश तो नहीं; धायजी। किंतु जब उसने ब्याह कर लेने का वचन दे लिया था तो ब्याह कर लेना था। मैं ने तो स्वयं कह दिया था। कर लेते तो क्या दो हत्याएं तो न होतीं।"

"तो ब्याह के लिये इतना दौलत मुहूर्त निकल जाता था। थोड़े दिन और रुक जाते।"

"रुक जाते! पर पेट कहां छुपता था। बहुत ऊंचा हो आया था।" कहते कहते मालकीन की आंख भर आई, किंतु फिर तेज होकर कहने लगी। "कहते लाज आती है, धायजी! तुम्हारी सीमा को मैं ने कितनी बार कहा। पर उस ने मेरी एक न सुनी। किसी और पर प्रसन्न हो जाय।"

धाय ने कहा, "नहीं नहीं! आप चिंता न करें! होता वही है जो होना होता है। हां, मीरा का ब्याह कब है?"

मालकीन ने कहा, "तुम निश्चिंत रहो! अब तो उन्हें भी आना ही होगा। न आये तो भी मैं तुम्हारा उन का सामना होने ही न दूंगी।"

× × × ×

[illegible] मालकीन ने [illegible]

फिर इसी बातें चल निकलीं। भाभी ने कहा, "आप कुछ लाइव ले कहते ग़रीबों को सहायता के लिये कोई चन्दा क्यों नहीं जुटवा देतीं?"

इन्दुरानी बोली, "मैं ने तो कितनी दफ़ा कहा है, किंतु सुनता कौन है? न जाने कैसी सनकी हैं। अपने दामों में तो एक धेला देने नहीं चाहते, यूँ, बड़े-बड़ों को ज्योतिषी से हज़ारों उड़ा देते हैं। बड़े चित्तों से सामने ऐसी बातें करते हैं जैसे बड़े पवित्र साधु हों और पीठ में पैसा कि बस!"

× × × × × ×

शाम को अनिरुद्ध सिंह के पीता आने पर सच्चा ने पूछा, "कहो क्या हुआ? किसी ने कुछ कहा तो नहीं?"

अनिरुद्ध सिंह बोला, "कहता कैसे? मैं जो काली छाती पर बैठा था!"

"तो उसे बिल्कुल पता नहीं लगा?"

"पता-वता तो कुछ नहीं लगा। हाँ, कुछ गड़बड़ हुआ था और वह होना स्वाभाविक था। क्योंकि दोनों अपने ही यहाँ डकैती!"

"डकैती!"

"डकैती क्या! चांदी का लट्ठा लेने पड़ा और ५०० में एक का गुंडा बंदे हो गया।"

"किंतु अब इन हत्याओं का क्या होगा?"

"कैसी हत्याओं का?"

"आखिर वे मरी हैं, इन का पाप तो लोहीगा! कुछ भई-पुण्य, तीर्थ-व्रत करना चाहिये।"

"उंहु! तुम तो पागल हो। इस में काहे का पाप?"

"पाप कैसे नहीं है! कुछ तो ग़रीबों को देना चाहिये।"

"नहीं, कुछ देने की ज़रूरत नहीं है। तुम्हें इस झगड़े में बिल्कुल नहीं पड़ना चाहिये। ऐसे पापों पर मैं बीसियों होते हैं। दो बार के प्रायश्चित्त किये जाय तो नीलकंठ बनना पड़ जाय।"

4C

विदाई

(१५)

अन्त में युद्ध समाप्त हुआ और बुर की ट्रेनिंग उस के परिवारिकों को भेज दी गई। ईस्ट इन्डिया कम्पनी की सिफारिश से ट्रीलिंड को जीवन भर के लिये ४०० बीघा भूमि जागीर में मिलने और ½ वेतन पेंशन का प्रस्ताव हुआ। किंतु ट्रीलिंड ने भूमि आदि की अपेक्षा नकद इनाम लेना पसन्द किया और फलतः भूमि की औसत आय देने की बात चलने वाली थी उस से इनाम में मिल गई।

अब ट्रीलिंड के लौटने की तयारी हुई। इस कुछ महीने से वह राजनैतिक और सामाजिक बातों में बड़ी दिलचस्पी ले रहा था। समय २ पर वह बड़ों की भिन्न २ संस्थाओं और पार्टियों में जाता था। उन की बातें समझता था और अपने देश की समझता था। गरीबों की दुरी अवस्था का उसे पूरा अनुभव था ही, उस के वर्णन का प्रभाव भी अच्छा पड़ा। प्रायः सभी श्रोताओं के लोगों की सहानुभूति बढ़ गई। उन्हीं की सहायता से ट्रीलिंड ने एक कार्यक्रम तय किया और पार्लियामेंट में तथा बाहर अपनी सहायता के लिये एक समिति बनाई।

धीरे २ ट्रीलिंड की वापसी की तारीखें आ पहुंची। एकदिन पहले सब मित्रों ने मिल कर उसे भोज दिया। इस भोज में लन्दन में रहने वाले भारतीयों और भारतीय विद्यार्थियों ने भी बड़े उत्साह से भाग लिया। कुछ दूसरे देशों के भी लोग थे।

भोज के पश्चात वक्तृताओं का सिलसिला आरम्भ हुआ। सबसे पहले सायंकालीन पोशाक में एक अंग्रेज अपने सँवरे हुए सिर के बालों को उंगलियों से सहलाता हुआ खड़ा हुआ और अपनी अधकटी मूंछों में मुस्कराता हुआ बोला, "मैं तो विश्व-बन्धुत्व के पक्ष में हूं। हमें न केवल मार्टिन-लूथर के प्रोटेस्टेन्ट और कैथलिक आदि के बंधनों से मुक्त होना, अपितु हमें मानव जाति की एकता का अनुभव करना चाहिये। अतः मैं तो दोनों ही सहायता दोनों हाथों से देता हूं।"

इसी क्रम से बारी २ सभी वक्ता उठे। किसी के हाथ में चाय का प्याला था, उसने उसे

तब का ध्यान अपनी ओर विशेष रूप से आकर्षित किया। वह बोला, "एशिया को संसार की सभ्यता-ओं का जन्मदाता है और वह मानव जाति की एकता को व्यवहारिक रूप देने के लिये सब से अधिक उत्सुक है। जब तक यह तब तक असंभव नहीं है, जब तक इन साम्राज्य वाद के दीवानें का अन्त नहीं कर दिया जाता। ये लोग जब तक रहेंगे तब तक इसी मनुष्य जाति को एक न होने देंगे!"

इस पर एक इंटेलियन चिल्लाया:- "मानव जाति के टुकड़े किये हुई इन्हीं लोगों ने हैं।"

अब एक फ्रेंच सज्जन अपने लम्बे भूरे बालों पर हाथ फेरते हुए एवं बड़े-बड़े दाढ़ी मूंछ रखते, खड़े हुए। उन्हों ने एक बार सैलानी दृष्टि की भांति चारों ओर देखा और फिर बोले, "मेरे इंटेलियन मित्र ने ठीक कहा है। संसार में जब से साम्राज्य वाद का और पाशविक बल के लड़ो एकत्र करने के सिद्धान्त का जन्म हुआ है, तब से बराबर खून की नदियां बह रही हैं। इन लोगों ने जाति, प्रान्त, समुदाय और देशों के नामों पर भूमि छिनाने का भाई-भाई को शत्रु बना दिया है और इनका उन की फूट से फायदा उठाना है। इस लिये सब से पहले इन दो बातों का अन्त होना आवश्यक है। इन लोगों की अजीब हालत है। एक बादशाह महाराजा का सिंहासन जाता है तो ये दुखी आकाश-पाताल एक कर डालते हैं, किंतु वे लाख एक दुखियों की गर्दनों को रेत डालें तब से आते हैं तब भी कोई चूं नहीं करता।"

इस के बाद एक विशाल काय रूसी खड़ा हुआ। वह बोला, "वास्तव में संसार की शांति की कुंजी एशिया है। यदि हम चीन और भारत को स्वतंत्र कर लें तो शीघ्र ही संसार को स्वतंत्र कराने में तीन दिन का काम है। इस लिये अभी तक की अपनी दो विफलताओं का उत्तर करने में लगानी चाहिये।"

इस के नीचे मि० मार्टिन खड़े हुए। उन्हों ने कहा, "हम ने हम हिन्दुस्तान की दो बड़ी गलतियों के कारण अब तक हम लोग अंधेरे में हैं। यह हमें अब मिस्टर हीटलर से मालूम हुआ है कि हमें

बीसवीं सदी में भी इंग्लैंड के नाम पर यहां अंग्रेजी बाँड शादी क्या दी (ही है) यहां आज भी गुलामी जारी है। लोग गुलाम बनाए जाते हैं। उन के बच्चे ईसाई माताओं की कोख से छीन कर दहेज में दे दिये जाते हैं। (शेम शेम की ध्वनि) के उच्छिष्ठ खाने को बाध्य किये जाते हैं। प्रजा को पदाक्रांत पाप हल्का होता है। मनुष्यों को और दूसरे प्रजा जनों को न संगठन की स्वतंत्रता है न बोलने लिखने की। न यहां कोई कानून है न व्यवस्था। छोटे से छोटा अधिकारी भी अपनी इच्छा को कानून बना सकता है। (फिर शेम शेम की ध्वनि) और तो और वेश्या अवतंस जाती है!"

एक :- और यह कहता है इंग्लैंड के नाम पर धब्बा। मैं ने कहा नहीं कि विन्धाम्बा सभ्यता सीखते तक तो स्वतंत्रता पनप नहीं सकती।

अन्त में इंग्लिश हड़ताल हुआ। उसने एक से पहले एक दो उन के क्रम, उन की महानुभूति और उद्धारण के लिये धन्यवाद दिया और कहा :-

"आखिर हमें नेताओं और एजेन्सियों पर क्यों इतने हक हैं न चाहिये। इस में सन्देह नहीं कि अंग्रेज कुटुम्ब ने उन के हाथों बहुत अधिकार पाया है। किंतु फिर भी क्या यह सच है कि उन के सब बहुत से व्यक्ति अच्छे आदमी हैं। दोषपूर्ण वर्तमान व्यवस्था दोषी है। इसी देश में तो हमारे राज्यसत्ता प्रकृत और साम्यवादी उपायों का सहारा लेती रही। भारतवर्ष का पुराने शासन का सारा इतिहास साम्यवादी शासन की नजीरें हैं। उस जमाने में हम दासों को एक्सरी कला में गिने जाते थे। उन के अभाव से वहां इतनी कला की कोई उन्नति हुई थी। इस प्रकार धनाढ्य वर्ग धन लेगारियों का धंधा चलता था। दूसरी ओर धनाढ्य और प्रजा, धन और शक्ति को आध्यात्मिक उन्नति के पृष्ठपोषक का साधन मानते थे। (उदाहरण में ले लीजिए

व्यय भी बड़े संकोच से लेते थे। एक से अधिक
सादा जीवन बिताते थे। अंग्रेज शासन में तो
प्रत्येक ग्राम स्वतंत्र था। एक अपने ग्राम
का न्याय, शासन, शिक्षण, रक्षण आदि
स्वयं करते थे। इसी लिये अनेक बड़े २
राजाओं ने एक २ न्यायालय से हुई काम
चल जाता था और मध्यस्थ से अधिक
दोई भूमिका न लेता था। यही कारण है कि
वे अबतक जीवित रह सके हैं और भविष्य में
भी वे जीवित रहेंगे तो इसी उपाय से।

किंतु साथ ही हमें इन के विरुद्ध का
अनुकूल सोचने की आवश्यकता नहीं। हमें
तो सिर्फ वर्तमान अवस्था में वांछित परी-
वर्तन करना है। अर्थात हम राजाओं के शत्रु
नहीं किन्तु राजा के शत्रु हैं। प्रकृतभेदों के विरोधी
नहीं, कृत्रिम भेदों के विरोधी हैं। किंतु हमारी बात
में मैं यही सिद्ध करना चाहता हूं कि जाति और सत्ता
संस्था के उद्धार की कुंजी है। यह देखी कि स्वतंत्रता
और इसी के लिये हुए धन जन का बल है कि
संस्था के इतने देश छोटे २ देशों द्वारा परतंत्र
किये जा रहे हैं। किंतु वर्तमान युद्ध ने
ऐसे लोगों की भी आंखें खोल दी हैं और इस
का का संग्राम ईश्वर ने चाहा तो अन्तिम ही होगा।

अन्त में मैं एक बार सहायता के लिये अपील
और विदाई के लिये एक बार धन्यवाद देता हुआ
विदा हुआ।

(ङ)

पुनरागमन और दुर्घटना

(५८)

ठाकुर हरिसिंह देश का कोना कोना देखा था। कहीं भी उन्हें अशान्ति की बात न दीखी। सर्वत्र शान्ति थी। कहीं कहीं चोरी डकैती की घटनाएँ सुनने में आती थीं। वह भी बहुत कम। अधिकांश जनता सुखी थी। सर्वत्र शान्ति थी। सर्वत्र सुख था। सर्वत्र समृद्धि थी। सर्वत्र आनन्द था। सर्वत्र उत्साह था। सर्वत्र उमंग थी। सर्वत्र उल्लास था। सर्वत्र हर्ष था। सर्वत्र प्रसन्नता थी। सर्वत्र आनन्द था। सर्वत्र उत्साह था। सर्वत्र उमंग थी। सर्वत्र उल्लास था। सर्वत्र हर्ष था। सर्वत्र प्रसन्नता थी।

ठाकुर हरिसिंह एक बार अपने ग्राम गया। किंतु वहाँ जाकर देखा तो वहाँ कुछ भी न था। न अतीत न वर्तमान। न भविष्य। घर आदि सब कुछ लोगों ने अधिकार कर लिया था। ठाकुर हरिसिंह अपने घर के द्वार पर खड़े चुपचाप ही रो आया था। उसे अपने ज्येष्ठ भ्राता की मानसिक अवस्था ज्ञात थी। इसी लिये उसने सोचा था कि पहले वह उनकी एक अवस्था जान सुन ले और उसमें कुछ परिवर्तन आवश्यक हो, वह कर ले, तब अपना आना और अवस्था परिवर्तन विशेष रूप से प्रगट करे। किंतु ग्राम में आने पर उसने ~~उसने कि बातें सुनकर हुई तब वह चुपचाप ही लौट गया।~~

X

ग्राम में ठाकुर हरिसिंह को नहीं पहचान पहचानते भी कैसे? कहाँ वह अस्थि चर्मावशिष्ट पंचदशवर्षीय हरिसिंह और कहाँ यह विशाल काय तरुण? कहाँ वह इधर उधर चिथड़ों से अंग ढके फिरने वाला दरिद्र-चिह्नहीन बालक और कहाँ यह कीमती कपड़ा और तगमे लगाए हुए रौबीला जमींदार सरीखा व्यक्ति। लोगों ने उसे देखकर हरिसिंह के ही किसी कुटुम्बी-शत्रु की जाँच करने वाला कोई हाकिम समझा और इसी लिये उन्होंने उससे अधिक तर्क भी नहीं मिलाया।

हरिसिंह ग्राम से बाहर निकल ही था कि उसे एक स्त्री, जो कुछ बेचने लिये आती दिखी दी। अत्यधिक वह स्त्री को ध्यान पूर्वक नहीं देखता था, किंतु उस स्त्री की आकृति और भंगिमा ने उसे कुछ विशेष आकर्षित किया। वह उसी ओर ध्यान से देखने लगा। स्त्री ने भी हरिसिंह को देखा तो वह खड़ी हो गई। किंतु दूसरे ही क्षण वह घूंघट निकाल कर अपने मार्ग पर चल

सिंह की। इतिहास के मंच पर उथल-पुथल मच गई। उसे [illegible] का ध्यान आते ज्यादा देर नहीं लगती है। किंतु यह कौन है, अकेला परिलक्षित है, बहुत बड़ा तंत्र का अभिलक्षण न हो सका। [illegible] का पास की इच्छा है कि सिंह जरा उससे बात-चीत करे, किंतु वह अपने अज्ञातरूप से लौटने का ध्यान हो आने से उसने कहा नहीं दिया, वह सिंह [illegible] पहुंचा और वहां से अपना सामान ले सीधा प्रयाग के लिये रवाना हो गया।

इस समय हिंसानों में क्रूर मनोवृत्ति फैली हुई थी। देश भर के हिंसात्मक संघ स्थापित हो चुके थे। पुराने हुए अत्याचारों ने उन्हें विशेष रूप से भड़का दिया था। बड़े, लिये भी उन के आंदोलन के पक्ष में थी और इस लिये वहां और पास के पुलिस को उन पर उद्दण्डता के आरोप लगने का अवसर नहीं मिल पा था। आंदोलन ही सच्ची प्रायः शस्त्रविहीन असहयोग के संग्रही थी। इसी लिये अधिकारी वर्ग असमंजस में थे। शस्त्रपूर्ण आंदोलन पर हिंसक शक्ति का प्रयोग देना कठिन था। उधर आंदोलन आंधी-तूफान बनता जा रहा था।

अंत में हर्षे, जमींदारों और एजेंटों ने उसी पुराने अस्त्र से काम लेना शुरू किया। क्या हिंदू, क्या मुसलमान और क्या हिंदू-मुसलमानों की उपजातियां। सब श्रेणी के जमींदारों और हाकिमों ने जाति की दुहाई देनी शुरू की। एक जाति को दूसरी के विरुद्ध उभाड़ने का और जाति के नाम पर गरीबों को, जमींदारों के विरुद्ध खड़ा होने का प्रयत्न किया जाने लगा।

इतिहास ने पहले भी ऐसी प्रगति उठाने को बरदाश्त की थी। यह भी उसे में तुरंत हस्तिनित होगया। [illegible] के हस्तिनित होने का [illegible] भी आश्चर्य जनक हुआ। प्रथम तो सौभाग्य कि विदेशी के घूम ने आना हुआ। उधर विदेशी पत्रों ने उस की प्रगति की धूम मचाना लगी और फलतः वह [illegible] बाजों और नेताओं का भी ध्यान उस ओर

आकर्षित हुए बना। विशेषत: जिमीदारों को जब यह मालूम हुआ कि वह उन्हीं में से एक है, तो वे बहुत घबराए।

(ख)

आज बीबी के ज़िमीदार के यहां कुछ मित्रों को भोज दिया जाने वाला था। ग्राम के बाहर एक उपवन था और उपवन के बीच में एक छोटा सा भूतल बना हुआ था। इस से थोड़ी दूर हट कर कुछ साधारण मकान बने हुए थे। इन्हीं मकानों में ओलन्दी की तपस्वी रहती थी। मनुष्यों की चहल-पहल कम थी। कोई पानी ला रहा था तो कोई बर्तन धो रहा था। कोई शाक-भाजी कत रहा था कोई आटा गूंद रहा था। मकान भी लिपवाया गया था। दरवाज़े में बन्दनवार के पत्ते लटकाए गए थे। नीचे कालीन और ऊपर फ़ानूस शोभा दे रहे थे। दीवारों पर चित्रों की पंक्ति थी, जिन में अधिकतर कुरुचिपूर्ण थे।

क्रमश:, मेहमान आने लगे। ज़िमीदार स्वयं दरवाज़े पर खड़ा हुआ था और आने वालों का स्वागत कर उन्हें मकान दिखाता जाता था। मेहमानों में ड्यूसिंड्र भी था। ज्यों ही आ कर उसने ज़िमीदार को नमस्कार किया, त्यों ही उन की आंखें चार हुईं। उन में अधिक परिचय ड्यूसिंड्र को न था। पहले युद्ध-सम्बन्धी बातें चलीं। फिर इंग्लैण्ड के सामाजिक जीवन की। ड्यूसिंड्र ने अंग्रेज़ जाति की प्रशंसा की। एक बोला,

"~~अंग्रेज़ों की प्रशंसा का विषय~~ आज कल लोगों की एक नई राय हो गई है। वे कहते हैं कि [illegible] प्रशंसा नहीं की जा सकती। प्रशंसा केवल गुणों की है।"

दूसरा बोला, "ये कुछ नए सूत्र निकाले हैं। भला ऐसा भी कहीं हो सकता है? गुणों ही की तो [illegible]

तीसरा बोला, "ड्यूसिंड्र जी से उन्हीं का [illegible]

किंतु द्रौपदि इस बात से सहमत नहीं था। वह बोला, "कल दीक्षित होगा, इस संबंध में मैं उसी पक्ष का समर्थन करूंगा जिसे आप मूर्खतापूर्ण कहते हैं। मेरा विश्वास है कि मानसिक संकीर्णता ही मनुष्य का चरित्र निर्माण करते हैं और उन का एक से यदि कुछ संबंध है तो उतना ही जितना कि भोजन से!"

"भोजन से?" एक बोला।

"हाँ, भोजन के अनुसार ही में वात-पित्त-कफ आदि की प्रधानता होती है और तदनुसार ही मनुष्य के स्वभाव में प्रमाद, शांति, क्रोध आदि का बल होता है। बस यही तर्क का प्रमाण है। आगे सारी बातें संस्कारों पर निर्भर हैं। मैं तो कम से कम यही नहीं मानता कि युद्ध क्षात्र धर्म है!"

"युद्ध क्षात्र धर्म नहीं है? यह आप क्या कहते हैं? यदि युद्ध क्षात्र धर्म न हो तो क्षत्रियों का धर्म क्या होगा?" दूसरे ने उत्सुकता से पूछा।

द्रौपदि बोला: "मैंने तो कहीं स्मृति शास्त्र वेशम्पायनोक्त युद्ध क्षात्र धर्म लिखा नहीं देखा है। युद्ध क्षात्र धर्म तो पशुओं का है, किंतु मनुष्य तो बुद्धि प्रधान है। शास्त्र भी यही कहते हैं कि:—

प्रजानां क्षण, दानं भिक्षया ध्ययनमेव च।
विप्रस्य क्षत्रियस्य क्षत्रियस्य समासतः प्रजारक्षणं च।

इस में युद्ध का कहीं नाम भी नहीं है। अतः केवल प्रजा की रक्षा के लिये युद्ध विहित है।

"और राज्य रक्षा के लिये नहीं?" तीसरे ने पूछा।

द्रौपदि बोला, "राज्य शब्द में प्रजा-प्रजा दोनों सम्मिलित हैं। दोनों की सम्मति से ही राज्यव्यवस्था बनती है। ऐसी अवस्था में उस व्यवस्था को भंग करने के लिये आने वाले शत्रु से लड़ना तो आत्म रक्षा है, आप चाहें तो उसे क्षात्र धर्म कह सकते हैं। किंतु यदि प्रजा और राज्य के बीच में ही यह अवस्था पैदा हो जाय तो?" गृहस्वामी ने कहा।

"तब युद्ध विहित नहीं ठहराया। प्रजा पर बल प्रयोग कहीं भी विहित नहीं है। किसी शास्त्र में नहीं लिखा है! क्योंकि प्रजा ही

प्रजा की जननी है, उसे तो प्रजा का हार्दिक प्रेम मिलना चाहिये।"

"तो प्रजा तो हमें मिलना ही नहीं चाहती। तब क्या हम राज्याधिकार छोड़ दें? आप भी कैसी बातें करते हैं?" [illegible] ने कुछ घृणात्मक दृष्टि से हरीसिंह की ओर देखते हुए और साथ ही अपने घृणा भाव को छिपाते हुए प्रश्न किया।

हरीसिंह कुछ मुस्कुराए और बोले, "प्रश्न यह है कि प्रजा ऐसा क्यों चाहती है? इसीलिये न कि हम ने अपना धर्म छोड़ दिया है? पहले हम प्रजा की दृष्टि में पिता थे। क्यों? इसीलिये कि उस समय हमें राज्य लोभ न था। प्रजा के कल्याण की तरह सोचते थे। स्वयं भूखे रहते किंतु उसे अच्छा खिलाते पहनाते। स्वयं कष्ट सह लेते किंतु उसे कष्ट नहीं होने देते। उसकी रक्षा के लिये प्राण तक दे देते। आज हम ने ये बातें छोड़ दी हैं। यही कारण है कि प्रजा का हम पर प्रेम नहीं है। ऐसी अवस्था में हम प्रजा से लड़ने को तथा नहीं तो अपने ही को वैसे क्यों न बनावें?"

"कैसे बनावें? आज कल के समय का तो इतनी आसानी से भी गुजर नहीं पड़ता।" [illegible] कहने लगे।

हरीसिंह ने कहा, "तो इस में दोष किस का? क्या तो हम ने ही बढ़ाया है न! पहले नेशनलिस्टों की तरह रहते थे। बिलकुल अंग्रेजों से दूर भागते थे। उन का व्यक्तिगत जीवन साधारण व्यक्ति के जैसा होता था। उसमें [illegible] प्रजाहित का काम करते थे। तब प्रजा भी वैसा ही आचरण करती थी और यही कारण है कि प्रजा में इतनी भी ओर राज्य को भी [illegible] की आवश्यकता न [illegible]

[illegible] ने कहा, "किंतु तब की प्रजा अब कैसी थी? आज समय [illegible] नाना [illegible] तो [illegible] की [illegible]

ट्रीसिंह की हँसी आई, "वह बोला : आप लोग तर्क बुद्धि के द्वारा दूसरों में ही दोष ढूंढने की चेष्टा करते हैं। किंतु दोष तो अधिक जिम्मेदार शक्तिमान होता है। प्रश्न यह है कि राजा ने प्रजा को शिक्षा देने का वैसा प्रबंध क्यों नहीं किया? मनुष्य जन्म से अज्ञ होता है। ज्ञान से वह बुद्धिमान बनता है। जब आपने उसे बुद्धिमान नहीं बनाया तब उसमें पशुता बढ़ी तो स्वाभाविक ही है। उसी पशुता का यह परिणाम है।"

किंतु प्रश्न कर्ता को संतोष नहीं हुआ। वह बोला, "किंतु शिक्षा की वैसी आजकल की ही व्यवस्था का प्राचीन काल में प्रमाण कहां मिलता है?"

ट्रीसिंह ने कहा, "उस समय शिक्षा की शैली दूसरी थी। उस समय आश्रम धर्म प्रचलित थे। एकाध्यं उन का पालन करते थे। और पचास वर्ष की आयु होते ही वानप्रस्थी हो जाते थे। फलतः प्रजा भी इन धर्मों का पालन करती थी। कि इन इतने संन्यासियों के द्वारा निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। वह शिक्षा अनुभव की होती थी और उससे मनुष्य सदाचारी बन बनता था। ऐसी अवस्था में आजके शिक्षाविभागों की आवश्यकता ही न थी। किंतु जब इससे भिन्न और गृह का मोह छूट गया तब स्वभावतः ही प्रजा ने भी उस धर्म को छोड़ दिया। अतः इसके लिये भी दोषी एकमात्र ही है और यदि यह अवस्था की बात बदलनी हो तो उसे ही [illegible] प्रचलित है तो कुछ हर्ज में कुछ भी संशोधन नहीं हो कि [illegible] और ही स्थापित करने चाहिए। [illegible] जैसे [illegible] ऐसे ही संस्थान और संस्थानिक होने चाहिए जो शिक्षा, न्याय, पुलिस आदि के [illegible] व्यवस्था करें।"

यह बात सब को अच्छी लगी। सबने सिर हिलाया। एक दूसरे से ट्रीसिंह की प्रशंसा करने लगे। किंतु अबतक क्या होना था?

इसी समय एक ब्राह्मदेवता आ पहुंचे और बोले "बलिदान" की तयारी हो गई है। "~~इसीलिए वे अपने देवता को बुलाने में थे~~

युधिष्ठिर बोले, "आज लेकिन कौन होगा?" एक दूसरे ब्राह्मण बोले, "क्यों? आप कौन होगा? युधिष्ठिर जी हैं न?"

युधिष्ठिर को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बोला, "मैं? मैं बलि-पशु का खोड़ा होऊंगा?"

"क्यों? इस में क्या है? यह तो अपना धर्म है।" ब्राह्मण देवता ने मुस्कुराते हुए कहा।

"नहीं! नहीं! मैं इस धर्म को नहीं मानता। मुझे तो इस के नाम से ही घृणा होती है।" युधिष्ठिर ने कुछ घबराहट के साथ कहा।

ब्राह्मण देवता इस पर जोर से हंस पड़े, "तो हे युधिष्ठिर, तब आपने लड़ाई में लोहा कैसे लिया होगा?"

युधिष्ठिर कुछ गम्भीर होकर बोला। वह बोला, "ब्राह्मण! लड़ाई में तो धर्म या अधर्म की रक्षा के लिये मनुष्य लड़ता है। किंतु यह तो केवल अपनी पाशविक वासनाओं की तृप्ति के लिये है। और मुझे क्या? मुझे के लिये भी, मुझे जिस दिन मालूम हुआ कि वह अधर्म-युक्त था, उसी दिन उतनी ही घृणा हुई थी जितनी एक निर्दोष और निरीह पशु को मारते देखकर होती है। फिर देवता विशेष को अपनी पूजा में दिये जीवों को बलि चढ़ाते हैं? उनके लिये तो मनुष्य को अपने ही जैसा प्राणी मारने में भी कुछ गलती नहीं दिखाई देती।" युधिष्ठिर ने भी कुछ गम्भीर होकर कहा।

ब्राह्मण देवता कहने लगे, "आपने क्या कहा? अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग तो धर्म को मानते नहीं। किंतु बलि होने वाला पशु ही देवता की ओर होने के कारण तो ऐसा मानते हैं। इसलिये ही यह आपको घृणास्पद है।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "क्या यही है?"

वह ब्राह्मण बोला, "हां, इसमें ब्राह्मणों का भी हित है। [illegible]

X [illegible] अहिंसा का दृष्टिकोण है, तब तो जो
मद्य-मांस का सेवन भी वैदिक धर्म का मौलिक
नहीं मानते, उन में अहिंसा के सबसे अधिक
समादर होनी चाहिये। किंतु प्रत्यक्ष यह
देखा जाता है कि जो जाति जितनी हिंसा
प्रिय है, उस में उतनी ही अधिक क्रूरता
है। उतनी ही अधिक विषमता भी है। [illegible]
[illegible] बालकों, स्त्रियों और साधु-संतों को?

इस पर पास बैठे हुए कई सज्जनों ने
अपनी सहमति का भाव प्रगट किया।
इसलिए मैं कहने लगा,

ने सुना तो हुए हुए।

इस बात से प्राय: सब सहमत हो गए। किंतु कपिलदत्त शिकार खेलने के बहुत ही शौकीन थे। उन्होंने एक नया मार्ग निकाला। बोले,

"एक और बात है। यह मान कि बलिदान में भी हिंसा है। और हिंसा प्रत्यक्ष है। साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि देवता - विशेषत: तामसिक देवता हिंसा से प्रसन्न नहीं होते। किंतु मनुष्य में यह बलिदान देवताओं के लिये नहीं होता। बात यह है कि मनुष्य में जहां उत्तम वृत्तियां हैं वहीं हिंसा क्रोध आदि दुष्टवृत्तियां भी हैं और यह उन्हीं को दूर करने के लिये किया जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो ये प्रवृत्तियां अपनी तृप्ति के लिये मनुष्यों को आपस में लड़ा लड़ा कर अथवा केवल मनुष्यों का नाश करें।"

इंद्रजित ने कहा, "कपिलदत्त! आपकी तोकड़ी बुद्धि की दाद किंतु भाग्य से यह है कच्ची ही। अतिमानव में यह नहीं आता कि चूंकि मनुष्य में क्रोध और एक लिप्सा है, इसलिये एक क्रोधप्रिय देवता या देवी की कल्पना आवश्यक है। असल मनुष्य कामान्ध है, इसी लिये ये कामान्ध देवता भी पैदा हुए हैं, जिनकी आड़ में मनुष्य दूसरों के प्राणों के मूल्य अपने विषयों की तृप्ति को! यह तो साम वाम मार्ग है। बंगाल में देवी पूजन-विधि का जन्म तो मनुष्य को त्याग ~~दीक्षा देने के~~ देवताओं के समान, सब पर सम प्रीति, दयाभाव दिखाने की शिक्षा देने के लिये हुआ है, किंतु आप जैसे महानुभावों ने उसे उल्टा कर दिया। ~~कपिलदत्त की बात सच हो तो भी नेम~~

*

कपिलदत्त कुछ अकचका कर बोले : "मैं नहीं समझा?"

इंद्रजित बोला, "अरे भाई कपिलदत्त शक्ति है। वह प्रतिभाशाली मनुष्यों को इसलिये इस लिये ही दे कि उन के द्वारा वह नीच और क्षुद्र प्रतीत होने वाले अत्याचार और सत्य गुणों की सच्ची कदर कर उन्हें प्रचार दे। किंतु आप लोगों ने तो दिव्य प्रतिभा के इन ~~ए~~ अभिव्यक्तियों की पूजा शुरू कर दी है।"

इस का कविता कुछ लज्जित हो गए। उन के हृदय में स्थित सत्यशुची प्रतिभा ने उन्हें अपना दुराग्रह छोड़ सत्य के सामने सिर झुकाने को विवश किया। वे कुछ पश्चात्ताप का सा अनुभव करते हुए बोले, "आप ठीक कहते हैं हरीसिंह जी! वास्तव में हम लोग इस दिव्यगुण का मूल्य नहीं समझते। अरे हमारी क्या कहें? ईश्वर न करे तो हमें पूछे भी कौन?"

हरीसिंह ने कहा, "बस यही विद्या ही कवि के पतन का मूल है। वास्तव में सच्चे कवि के सामने धन की एक्या है? सच्चा कवि अपनी प्रतिभा को बेचने की वस्तु नहीं मानता। वह उसे ईश्वरीय ओज मानता है जो केवल दिव्य विश्वविद्येश्यों की ही पूर्ति के लिए ही जा सकती है। यदि यही प्रतिभा ईश्वरीय ओज नहीं होती तो निश्चय ही वह भी तब मनुष्यों में हाथ पैरों की तरह बाजारू होती। यही कारण है कि प्राचीन कविगण कभी नहीं बेचते थे। सम्राट उन के चाटुवचनों से भी उन की झूठी प्रशंसा में वे एक पंक्ति लिखते थे। और यही कारण है कि तब मनुष्यों के कवियों को आदर पाने के लिये राजाओं का आश्रय लेना पड़ता था। लक्ष्मी कवियों के पैर दाबती थी - कवि - कुत्ते मन की लक्ष्मी के पीछे नहीं दौड़े फिरते थे।"

गृहपति कविवर हरीसिंह के अर्धोन्मुख मुख को देखते हुए बोले, "क्या आप पर भी हरीसिंह जी का जादू चल गया?"

कविवर बोले, "कुछ २ मान तो लेना ही होगा, बन्धु!"

अन्त में गृहपति तीन जनों के साथ हरीसिंह को वहीं छोड़, रोज को साथ ले कलिंग को चल चले। जाते २ गृहपति ने एक बार फिर हरीसिंह जी को मुड़ कर पूछा, "तो क्या आप ने कभी मांस मद्य का सेवन नहीं किया है?"

हरीसिंह ने कहा, "नहीं तो! खूब किया है! किंतु जब से यह विश्वास हो गया है कि यह अनुचित है तभी से छोड़ दिया है!"

तब क्या आप के लिये भोजन का प्रबन्ध

अजय कहानी होगी ?" अविनाश ने पूछा।
दीपशिखा बोले, "नहीं अविनाश ! इस का
अर्थ नहीं है कि मैं सांसारिकी हो गई, अपितु सब
मानने लगा है। कोई सुखी व्यवस्था होने की
आवश्यकता नहीं है। केवल, मैं निरर्थक परार्थ
खोजने लगा।

स्वप्न

(१७)

इस में कुछ संदेह नहीं कि अनिरुद्ध सिंह ने माता की बात को हँसी में उड़ा, उसका मुँह बन्द कर दिया, किंतु उस के हृदय का मुँह बन्द करना उसके लिये असम्भव था। उसे ~~मिस देवी को~~ हर क्षण वह चित्र सताता ही रहा। यहां तक कि उसने स्वप्न में भी उसका पीछा न छोड़ा। आँखें मिंचते ही उसका मृत-अकबालों का भयभीषण मूर्तिमें और घटनाओं के रूप में उसे विकल बनाने लगा। रात में वह दो तीन बार चिहुंक कर उठ भागी और चैतन्य होने पर अपनी दुर्बलता पर लज्जित हो फिर लेटी। किंतु नींद बहुत ही कम आई। जो कुछ आई, वह भी स्वप्नमयी न थी। काले देवल वाले कुंड की माता उसके समीप आ कड़ी होती थीं। ~~वे उसे~~ ~~पकड़ खींचती थीं।~~ वे लाल लाल आँखें दिखा कर उससे कहती थीं कि "यह तुम्हारी ही करतूत है! तुम्हारे कारण ही उसने पति को कुपथ पर चलाया! तुम्हारे कारण ही उसने अनेक अबलाओं की हत्या की! तुम बड़ी अभिमानिनी थी। तुम अपने पति को सहायता नहीं देती थी। उसके विनाश के पथ पर जाते हुए ही थे! किंतु स्मरण रखना, इससे तुम्हारा भी कल्याण न होगा! तुम भी सुख से न रह सकोगी!"

इन बातों का, कि चाहे वे देवल स्वप्न-दर्शन ही हों, अनिरुद्ध सिंह की मनोवृत्ति पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ा। प्रातः काल उसने अपने शयनागार में निद्रा से उठते ही बड़ा विलक्षण परिवर्तन पाया। उसके हृदय की सारी छाया ने अधिकांश में नष्ट हो, यद्यपि वह अपने को साधारण स्थिति में ही दिखाने का प्रयत्न करती थी, किंतु भी उसके मन की अधिकांश प्रसन्नता हो जाती थी। ~~अनिरुद्ध~~ किसी काम से मन लगता था न किसी की बात चीत में।

अतः उसने इस अशांति से छुटकारा पाने के लिये

गुरु महाराज के पास जाने का निश्चय किया। अनिरुद्ध सिंह जी आज ग्राम में न था। उसे कुछ अधिकारियों से भेंट करनी थी और इस लिये प्रातः ही चला गया था। अतः इन लोगों को भी जाने की तयारी करने में विशेष विलम्ब न लगा। भोजन आदि भी वहीं बनाने का निश्चय हुआ। दो ताँगे तथा दो एक्के आ गये थे। थोड़ी, एवं कुछ दास दासियों के साथ वह चल सिदली।

× × ××

यहाँ गुरु महाराज के थोड़ी कुछ परिचय देना आवश्यक है। वे साधु हैं। साधु होने के पहले क्या थे, कितने का साधु हुए और कितना धन आए, इत्यादि बातें आज तक कोई नहीं जानता। कोई जानने का प्रयत्न भी नहीं करता। क्यों? तो व्यक्ति हंसा से बाह्य से मुकाबला, उसे इन बातों से सरोकार?

गुरु जी की उम्र प्रायः ८० वर्ष की होगी। ग्राम से प्रायः आधा कोस दूर, कोई २ फर्लांगों के बीच में बनी हुई एक कुटी में रहते हैं। केवल दूध एवं कन्द मूलों पर रहते हैं। इनके लिये भी वे किसी पर भार नहीं डालते। उनके कुछ भक्तों ने उनके लिये वहीं एक बगीचा लगा दिया है और कुछ बकरियां भेंट कर दी हैं। वे ही बकरियों के चराते और उपवन की रक्षा एवं देख रेख करते हैं। बस इन्हीं से गुरु जी का काम भली भांति चल जाता है।

किंतु इस का यह अर्थ नहीं है कि उन्हें कोई कुछ देता ही नहीं है। यहां उन की भूरी भूरी श्रद्धा है। अनिरुद्ध सिंह के पिता के समय से ही। अनिरुद्ध सिंह के पिता के समय में ये इस स्थान पर आए थे। वे भी ऐसे ही एक सिद्ध थे और इस लिये उन पर सभी की बड़ी श्रद्धा थी। अनिरुद्ध सिंह के पिता ने और स्वयं अनिरुद्ध सिंह ने भी उन्हें कुछ देने की कभी कमी नहीं की, किंतु उन्हों ने इसका कुछ दिया। वे बोले, "अरे आजकी दुनिया में चलना होता तो यह दौड़ धूप की क्या आवश्यकता थी? किसी संसारी से ही जिस वस्तु की आवश्यकता है, उसी के पास वह प्रायः अधिक आती है। इसी लिये आवश्यकता न होने पर भी लोग उन को

वार्षिक महोत्सव पर्यों की दक्षिणा भेंट करते थे और यह भेंट बराबर बढ़ती ही जाती थी।

इस वृद्धि का एक और भी कारण था। नकद्ल भेंट में अच्छी रकम आने लगी तो उन्होंने आसपास के ग्रामों के कुछ समझदार आदमियों को बुलाकर उनकी एक समिति बना, यह रकम उन के सुपुर्द कर दी। उसमें से कुछ रकम तो गुरुजी की आज्ञानुसार लोकोपयोगी कामों में खर्च कर देते थे। गुरुजी के इस पवित्र की बदौलत ही प्रायः इस जिले भर में ग्राम २ गायों के लिये प्याऊ बन गई थीं। प्रायः ५० पाठशालाएं चलती थीं। तीन औषधालय चलते थे। इस के सिवाय उन्हीं के ऊपर रहने अधिकांश लोगों ने मद्य-मांस का सेवन छोड़ दिया था। बैलों को हाँकने की लकड़ी में दीर्घ लगाने और पशुओं को निर्दयता दिखाने बंद हो गया था।

इस के सिवाय लोगों के कथनानुसार उन की आध्यात्मिक शक्ति बहुत बढ़ी हुई थी। वे लोगों के मन की बातें बिना कहे ही जान लेते थे। 'हिप्नोटिज़म' के वे आचार्य थे। इस योग की शिक्षा प्राप्त करने तो प्रायः दूर २ के साधु उन के पास आते थे। किंतु वे इस शक्ति का प्रयोग जनसाधारण में बहुत ही कम करते थे। किसी असाध्य-रोग के रोगी को अच्छा करने में ही वे लोगों को उनकी इस शक्ति का परिचय मिलता। यही नहीं, वे सीखने को आने वाले साधुओं की भी बड़ी कड़ी परीक्षा करते थे और केवल उसी को कुछ सिखाते थे, जिस के बारे में उन्हें विश्वास हो जाता कि वह उन से साधारण लोगों को अपने अलौकिक शक्ति सम्पन्न होने का विश्वास दिलाने [illegible] के लिये साधन नहीं होगा।

अस्तु, सोलो दीक्षांत के पहले ही उन्हें [illegible] बैठने का संकेत किया और वे आशीर्वाद दे उन्हें बाहर चले गये। सोलो दीक्षांत के हर्ष का पार न था। [illegible] आशा का उदय हुआ। [illegible] मूर्ति, [illegible] और [illegible] ने [illegible] का आदर्श [illegible] कर दिया। अनुचरों को [illegible]

बनाने की आज्ञा दे वह गुरुदेव की बाट देखने लगी।

थोड़ी देर में गुरुदेव वाटिका आ कर अपने आसन पर बैठे और कुछ देर माला फेरते रहने के पश्चात महिमी से उस के आने के कारण के सम्बंध में बातें करने लगे। माला की माता ने सब कथा आद्योपान्त सुनाई और पति को सुपथ पर लाने के लिये प्रार्थना की। गुरुदेव बोले, "बेटी! यह बड़ा कठिन कार्य है। इस समय लोगों के हृदयों में आसक्तिकता के नाम पर नास्तिकता ने इतना गहरा अधिकार कर लिया है कि साधारण उपायों से उस का प्रभाव दूर हो ही नहीं सकता। कि जहां अन्ध की सत्ता भी उसे पोषण देने वाली हो वहां दाता तो कहना ही क्या? वहां तो इसे असाध्य रोग ही समझना चाहिये। अतः मेरा तो विचार यही है कि उन्हें सुपथ पर लाने का प्रयत्न करने के साथ तुम अपने कर्तव्य का दृढ़ता से पालन करती जाओ और अवशिष्ट ईश्वर इच्छा पर छोड़ दो!"

किंतु महिमी को इससे सन्तोष न हुआ। उसे [illegible] स्वप्न में कहे हुए देवता देवी के शब्द याद आने लगे, "तुम अपने पति की सहधर्मिणी नहीं हो"—"उन्हें उनके विनाश के पथ पर जाने दे रही हो!" वह अभी हो कर गुरुदेव के पैरों पर गिर पड़ी और बोली "नहीं गुरुदेव! मैं इस प्रकार ईश्वर इच्छा पर नहीं छोड़ सकती! किंतु साथ ही मैं बिना दुःख भी नहीं दे सकती! इस लिये आप को इस में मेरी सहायता करनी ही पड़ेगी!" गुरुदेव कुछ सकपाए। वे इस प्रश्न को टालना चाहते थे। प्रश्न बड़ा जटिल और दुःसाध्य था। किंतु महिमी भी उन्हें सहज में छोड़ने वाली न थी। वह बराबर अपनी बात पर डटी रही और अन्त में विवश हो गुरुदेव ने इच्छानुकूल वचन प्रदान किया।

दूसरे दिन, गुरु महाराज के आदेश के अनिरुद्धसिंह प्रातः काल ही आ पहुंचा था, किंतु गुरुदेव ध्यानमग्न थे। प्रायः ७ बजे के बाद निकले। तब तक अनिरुद्धसिंह भी स्नानादि से निश्चिन्त हो चुका था। अतः दोनों गुरुजी बैठक में बातें करने लगे।

पहले गुरुदेव ही अनिरुद्धसिंह से उसके व्यक्तिगत व्यवहारों आदि के प्रश्न करते थे, किंतु इस बार उन्होंने प्रारम्भ से ही ऐसे ही प्रश्न छेड़े। अनिरुद्धसिंह भी इस बार समझ गया और उसने सब बातें निष्कपट भाव से स्वीकार कर लीं। गुरुदेव बोले:-

"अनिरुद्धसिंह! तुम ने सब बातें स्पष्टतः स्वीकार कर लीं, इस से मुझे विशेष प्रसन्नता हुई है। मनुष्य तब तुच्छ होता है, किंतु जब तक उसमें सत्य सहने और सत्य को सुनने-समझने की शक्ति है, तब तक उसे अपना अस्तित्व नहीं मानना चाहिये। किंतु तुम तो हिंदूधर्म को मानते हो न तो श्रद्धा है न?"

"अवश्य!"

"तब पाप-पुण्य और पुनर्जन्म को भी अवश्य मानते होगे?"

इस का अनिरुद्धसिंह ने तत्काल जवाब नहीं दिया। वह कुछ विचार मग्नता हो गया। यह देख कर गुरुदेव बोले:-

"क्यों? कुछ संशय है क्या?"

"संशय? गुरुदेव, सच तो यह है कि मैं मानता भी हूं और नहीं भी मानता!"

"कुछ अधिक स्पष्ट कहो तो!"

"सच ही कहता हूं गुरुदेव! हिंदूधर्म पर मुझे श्रद्धा है, अभिमान है और प्रेम है। हिंदूधर्म के विधि-निषेधों को तर्कहीन नहीं समझता। उनकी विधियों को अन्धश्रद्धा नहीं कहता। उनके दिखाये हुये विधि-विधानों का भी मैं पालन करता हूं। संध्या करता हूं। मन्दिरों में दर्शन करता हूं। किंतु..."

"किंतु, क्या?"

"किंतु यह श्रद्धा अधूरी होती है। श्रद्धा के साथ ही यह भी भाव मिश्रित होता है कि यह तर्क दिखावे के लिये है।"

"तो वास्तविक कर्तव्य क्या जान पड़ता है?" अनिरुद्ध सिंह ने कुछ चिन्तामग्न सा होते हुए कहा:-

"क्या बताएं? इस को मैं मेरा चित डांवा-डोल है। कुछ निश्चय नहीं कि मृत्यु के अनन्तर क्या होगा? परलोक है या नहीं?"

"जानने की इच्छा होती है?"

"होती है, किंतु बहुत बलवती नहीं। कभी २ हो-ती है तो भी बहुत थोड़ी देर के लिये। फिर उसे व्यर्थ ही कल्पना समझ कर छोड़ देता हूं। यही कह कर मन समझा लेता है कि अविदित और परोक्ष विषय ने देखा है? अभी तो जो कुछ सामने है, उस की चिन्ता होनी चाहिये।"

"किंतु यह तो अपने को और संसार को धोखा देना है। मनुष्य को अपने विश्वास के अनुसार चलना चाहिये नहि अपने अज्ञान से व्यर्थ विरोधी धर्म को..."

"किंतु मैं इच्छा पूर्वक धर्म को बदनाम नहीं करता।" अनिरुद्ध सिंह बीच में ही बोल उठा, "बात यह है कि न मुझे धर्म पर पूर्ण श्रद्धा है न पूर्ण अश्रद्धा!" इतने में गुरुदेव ने तीक्ष्ण दृष्टि से अनिरुद्ध सिंह की ओर देखा। अनिरुद्ध सिंह कुछ लज्जावश आंखें नीची किये रहा। किंतु इतने में ही दिल्ली ने उठे हुए दोनों को विदा दी। फिर जब उनकी दृष्टि गुरुदेव की दृष्टि से मिली, तब तो मानो उन पर वज्र आ गिरा। उस समय में ही मानो उन की दृष्टि के सामने एक अंधेरा छा गया। वह एक दम लड़खड़ा गया और गुरुदेव की ओर देखता रहा। गुरुदेव ने उसे दो बार कहा, "अनिरुद्ध सिंह, बैठो।" "बैठो मत जाओ।" किंतु अनिरुद्ध सिंह ने कोई उत्तर नहीं दिया। उस की नस २ के साथ हलचल मच गया। वह उठ खड़ा हुआ और आगे बढ़ा। फिर कुछ कदम चल कर गुरुदेव के

भूमि पर लिटा दिया। गुरुदेव उठ कर उस के निकट गए। उनके हृदय में हाथ रखा और फिर उठा कर बिस्तर पर सुला दिया।

(ख)

अचानक दिल्ली के हाथ पकड़ कर अनिरुद्ध सिंह को उठाते हुए कहा, "महाराज आज यह कैसी नींद है। उठिये! जल्दी उठिये। महत्तमी कक्षे याद कर रहे हैं।" अनिरुद्ध सिंह आंखें मलता हुआ, उठ कर सोचने लगा, "कौन है महत्तमी?" फिर उसने आंखें खोलीं। किंतु यह क्या? यह तो जगह ही नहीं दूसरी थी। जगह ही नहीं, देश भी दूसरा था। चारों ओर जो आदमी खड़े थे वे भी किसी देशविशेष के थे। उन की वेशभूषा ही विचित्र थी, उत्पुत बोली भी विचित्र थी। किंतु फिर भी अनिरुद्ध सिंह उन की पूरी बात समझता था। यह सब देख कर अनिरुद्ध सिंह चक्कर में पड़ गया। उसने सोचा, "यह क्या भूत भुलैया है? ये लोग कौन हैं? हैं यहां कैसे आगया? यह कौन सा देश था? यहाँ तो निश्चय ही नहीं था। गुरुदेव की गुफा में था, किंतु कौन से गुरुदेव यह बहुत बड़ा दालान कब बना दिया गया।

इतने में एक आदमी ने दूसरे पुरुष को कहा, "अरे विनुक महाराज उठे ही नहीं, उन्हें जल्दी जगाओ।"

अनिरुद्ध सिंह के पास खड़े हुए लोगों ने कहा, "वे तो हैं नहीं बैठे हुए कुछ सोच रहे हैं।" फिर अनिरुद्ध सिंह से कहा, "विनुक महाराज उठो न।" अनिरुद्ध सिंह चकित हो कर बोला,

"तुम विनुक महाराज किसे कहते हो भाई?"

"अरे किसे कहते हैं, आप को कहते हैं। क्यों, आप ऐसे प्रश्न क्यों करते हैं? क्या आप हमारे महत्तमी विनुक महाराज के भाई नहीं हैं?"

अनिरुद्ध सिंह बुद्धिमान तो था ही, सो कुछ कुछ समझ गया। नहीं भाई! तुमने धोखा खाया है। मैं विनुक नहीं हूं। मेरे लिये तो यह ऐसा ही अपरिचित देश है।

हां उन लोगों ने बड़ा आदर किया। और उन्हों

नाड़ी देखने लगा कोई आँखें। देखभाल दो के
दूसरे व्यक्ति से बोले "बीमारी तो कुछ नहीं है।
मालूम होता है कोई दुःस्वप्न देखा है।"

"अजी ग्रामीण है। शहर में इन को चक्कर पड़ा
होगा। इसीलिये भ्रम से बैठ गए हैं।" इस N.P. से कहा
अनिरुद्ध सिंह कोच, "नहीं भाई! मैं भ्रम में नहीं हूं
भ्रम में तुम हो! मैं इस देश में बिल्कुल अप-
-रिचित हूं!" इस N.P. के सामने खड़ा हुआ व्यक्ति कुछ
उग्र, "अच्छा अपरिचित हो तो तुम हमारी बोली
कैसे बोलते-समझते हो? तुम्हारी पोशाक हमसे
जैसी क्यों है? तुम हमारे मकान में कैसे
घुसे हो?"

अब अनिरुद्ध सिंह का ध्यान इन बातों की
ओर गया। उसने देखा कि "इन लोगों का कहना
बिल्कुल ठीक है। वह बोली तो उस की बोलता
समझता हूं पर, उस की पोशाक भी दिल्ली के जैसी
है। दिल्ली की तरह वह भी धोती की जगह एक
तहमद बाँधे और ऊपर अचकन पहने है। उस
के सिर पर भी बड़े N.P. बाल हैं। किंतु यह हुआ
कितना बड़ा?" इतने में एक दूसरे व्यक्ति ने
प्रश्न किया। "अच्छा, यदि आप अपरिचित
हैं तो अपने पहले देश, ग्राम आदि का
और अपना नाम पता बताइये?" N.P. अनिरुद्ध सिंह
इस प्रश्न का उत्तर झट देने को तत्पर हुआ। किंतु
यह क्या? उसे इन में से एक भी बात याद
नहीं थी। उसे केवल धुंधली सी यह स्मृति थी
कि जागने के पहले वह कुछ और था। किंतु
वह महाराज की पुरी में था!" किंतु इसमें अधिक
कुछ भी याद न आता था। अतः उसने कुछ
सोचकर कहा, "अच्छी बात है, आप ही
बताइये कि मैं कौन हूं?"

इस पर एक व्यक्ति ने कहा, "आप
हमको पहले इतना महाराज के भाई हैं। आप
का ग्राम यहाँ से दस कोस [illegible]। उस में
कल आग लग गई। आप के अतिरिक्त सभी
और का तक जल गया। आप भी [illegible]

टांग अब नहीं थी। उस की पीड़ा से आप अच्छे हो गए थे।"

अनिरुद्ध सिंह ने अपनी टांगें देखीं। वास्तव में दाहिनी टांग पर चलने का निशान था और उस की त्वचा अब भी कोमल थी।

अनिरुद्ध ने सिर खुजलाया। "कि एक सिपाही पर महतली आप की औषधि का इतना शुभ प्रभाव हुआ। योगी के कथन की पीड़ा का आप को विशेष अनुभव नहीं, इसलिये आप को कई औषधियों द्वारा दस दिन बेहोश रखे गए। पूर्ण आराम होने पर अब आप को चैतन्य हुआ था और तब हम ने आप को सारा हाल दिखा दिया था।"

अनिरुद्ध सिंह को उसी स्थिति की तरह इन बातों की भी स्मृति आने लगी और उसे यह विश्वास हो चला कि इन लोगों का ही कहना ठीक है। अतः वह बोला, "तब कदाचित उन औषधियों का प्रभाव अभी तक लक्षित नहीं हुआ है।"

N.P. "सम्भव है, यही बात हो। किंतु अब तो जीत चलना चाहिये!" सामने बैठे हुए व्यक्ति ने नम्रता से कहा। N.P. अनिरुद्ध सिंह चुपचाप उठा और विचार-मग्न हुआ उन लोगों के साथ चला। यह बाबा हमी उधेड़ बुन में था कि यह कौन सी नींद की स्थिति थी? इस में कौन सी सत्यता है और कौन सी भ्रम-मरीचिकाएँ? गुरुजी वाली बात को वर्तमान जीवन की? यदि यह स्वप्न का प्रभाव है तो इन में कौन सा जीवन स्वप्न है? एक सादृश्य? क्या इसी लिये वेदान्त ने सारे संसार को ही स्वप्न कहा है?" किंतु उस का साधारण बुद्धि था। उसे किसी भी जीवन की दृष्टि कदापि न आती थी। देखो, दृश्यमान सच्चे प्रतीत होते थे। किंतु दोनों का साथ निभना असम्भव था। उसे इस चक्र में फँस जाने से सचमुच चक्कर आने लगे। ऐसा भ्रम हो चला कि वह पागल हो जायगा। अतः में उसने इस अवस्था से छुटकारा पाने के लिये वर्तमान को ही सत्य समझने का निश्चय किया। उस ने मान लिया कि गुरुजी वाला जीवन भ्रम है। वास्तव में वह कितना

इस निश्चय से उसे बड़ी शांति हुई। एक निर्दिष्ट उधेड़बुन से पीछा छूट गया। अब उसने वर्तमान जीवन की प्रत्येक बात पर ध्यान देना शुरू किया। उसने अपने साथियों से पूछा,

"इस नगर का नाम क्या है?"

"मैंठ!" साथियों में से एक ने कहा।

"यहाँ राजा कौन है?"

"एनकुमारी स्वर्णमयी का।"

किंतु ये सब बातें ऊपर ही ऊपर उसके चित्त को अधिक देर तक आकर्षित न कर सकीं। उसे तुरंत अपना ध्यान आने लगा कि उसने कुछ देर पहले क्या देखा है। राजकुमारी का भी नाम सुना है। मानो वह इन सब बातों को पहले से जानता है। फिर उसने अपने चारों ओर दृष्टि डाली। देखा, वह साधारण मकान में नहीं, एक विशाल, स्वच्छ हवादार प्राचीर से घिरी भवनों और उपवन श्रेणियों के बीच में खड़ा है। भवन सब श्वेत संगमरमर के बने हुए हैं और यहाँ-वहाँ संधियों में स्वर्ण के बेल-बूटे बने हुए हैं। प्रायः सब भवन दो मंजिली इमारतें हैं। भवनों के सामने दूर तक फूलों और फलों के उपवन हैं, जिनके बीच-बीच में कुंज और कुंज बने हुए हैं। इन उपवनों के बीच में दूर तक स्फटिक शिलाखंडों का राजपथ बना हुआ है और जहाँ तक वे जा सकते हैं।

सामने एक विशाल मंदिर था, जिसके स्वर्ण जटित कलश झलमला रहे थे। उसमें से मनोमोहक सुगंधित निकल कर उस सौंदर्य से पूर्ण वायुमंडल को सुवासित बना रही थी।

विनुद मंदिर में जल्दी जल्दी एक कुण्ड के हाथ मुँह धोए और मंदिर में प्रवेश किया। देखा, मंदिर क्या है, साक्षात स्वर्ग है। चारों ओर हरे पत्थर की दीवारें हैं। छत में भी हरे पत्थर जड़े हैं। संधियों पर सोने और हीरों के बेल बूटे बने हैं और नीचे संगमरमर के पत्थरों का फर्श ऐसे कौशल से बनाया है कि दूर से वह ताजे दूब जैसा हरा दीखता है। एक ओर लड़कों सुन्दरियाँ खड़ी हैं और दूसरी ओर लड़कों पुतले। बीच में एक सिंहासन पर कुछ गायक बैठे मधुर स्वर से हरि कीर्तन कर रहे हैं और बीच में कटे हुए एक अखंड कुण्ड में प्रज्वलित हवन सजाए जा रहे हैं।

कुण्ड के आगे ही स्वर्ण खचित सिंहासन मंदिर है, जिस की दीवारों और छत सब विभिन्न प्रकार के चित्रों से सजी हुई हैं। इसी मंदिर के बीच में देव मूर्ति के सम्मुख खड़े हुए, हंसमुख, युवा गौरवर्ण महन्तजी पूजन कर रहे हैं। अवश्य ही यह कहना कठिन है कि उन के चक्षुश्चंचल नेत्र-नयन पुतलियों में अधिकतर चक्कर लगाते हैं या देव मूर्तियों में। किंतु इतना तो निश्चित है कि उन की आँखें एकाग्र होने से बच रही हैं। यही अवस्था दर्शकों की थी।

विनुदजी को ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो यह सब दृश्य उन का देखा हुआ है। यहाँ कुछ भी नवीनता नहीं है। महन्तजी से भी वे परिचित हैं। निःसंदेह पहले उन्हें इस पर कुछ आश्चर्य हुआ किंतु इसी क्षण वे मन ही मन इस आश्चर्य पर हँसने लगे। उन्हों ने सोचा: इस में आश्चर्य की क्या बात है? महन्त जी के भाई हैं और यह उन्हीं का मंदिर है। इसमें तो अपरिचित होना ही आश्चर्य की बात थी। कि [illegible] था?—

इस भाव से विनुदजी के मन से अजनबीयत का भाव उड़ गया। उन्हों ने भर उन के लिए जो आसन बिछा दिया गया था उस पर बैठ गए और ध्यान से सारी कार्यवाही देखने लगे। विनुद के मन में भी अपने उत्तरदायित्व का ध्यान आया और इच्छा: उन्हों ने भी एक ओर बैठ कर भूमि पर पड़ने लगे।

बिंदु बिंदुक ने देखा कि पुरुष - स्त्री सब शरीर से अत्यन्त निर्बल हैं। इस में संदेह नहीं कि वे प्रायः सब अस्वस्थ दिखाई देते हैं। सभी के शरीर विभिन्न प्रकार के मूल्यवान वस्त्रों से सजे हैं। प्रत्येक कई २ वस्त्र नीचे ऊपर पहने हैं। वस्त्रों पर कि आभूषण हैं। किंतु मुखमंडल के सिवाय। आँखें तक की गद्दी बँधी हुई। शरीर दुबले-पतले। हाथ में। शुष्क काष्ठ की तरह। अस्थि-दण्ड मात्र। बिंदुक इस का कारण समझने लगा यहाँ तक कि कितनों को वहाँ हलचल में पड़ा हुआ भी देख पड़ा था। अनेक - दर्शकों के कन्धों पर हाथ ले कुछ सहारा लेने का चलन का है के तो कितने ही रोगी का सहारा ले कर खड़े थे।

बिंदुकी इस का कारण सोचने लगे, किंतु किसी निश्चय पर न पहुंच सके। पहुंचते भी कैसे? वे ग्रामीण थे, वे नागरिक। वे साधारण स्थिति में ले निर्धन हो आए थे, वे महा अभावग्रस्थिति में पले थे। अतः

पूजा समाप्त हुई। महन्तजी ने बड़े निकट आ बिंदुक की ओर तीव्र दृष्टि से देखा। बिंदुक ने भी प्रणाम किया। उन्हों ने उठा कर उन का हाथ अपने हाथ में लेलिया और उन्हें कृपा दृष्टि से देखते हुए, मन्दिर से निकल बाएँ हाथ के विशाल एकरंग - भवन में प्रविष्ट हुए।

यह मकान क्या था, पुष्प भवन था। जिधर दृष्टि उठती थी उधर शोभा और सुगन्ध का ही साम्राज्य था। मानो विश्व के सर्वोत्तम शिल्पियों ने अपना कौशल पुष्पों को सजाने में दिखाया था। नीचे से चौड़े पुष्पों का वितान लगा था। दीवालों पर लताएँ झूम रही थीं। सीढ़ियों पर दोनों ओर पुष्पों की मालाएँ मूर्तियाँ चढ़ने वालों को लुभाए लेने के लिये हाथ आगे बढ़ाये खड़ी थीं। महन्त ने पहले तो बिंदुक से कुशल समाचार पूछे, फिर इधर उधर की बातें की। बिंदुक ने उन्हें समझाने की चेष्टा की कि वे उस प्रसंग को छेड़ें। किंतु इन बातों से उनके मन की बात उलझ रही थी।

अन्त में उन्हों ने कहा कि उन्हें भी निराला था। पहले ही दर्शन में बिंदुक ने देखा कि वीथियों में सुन्दर कारीगरी की हुई प्रतिमाएँ, गमले, हौज आदि गंधर्व ही हैं।

दूसरे दर्जे में [illegible] कालिदासें गला गला
लाए [illegible] थी; महन्त के पुकारा करते ही सब लाद [illegible]
[illegible] महन्त को प्रणाम किया और अपने २ बनाए पुष्पामाल
भेंट किये। महन्त ने बिन्दुक से कहा,

"ये मेरे शरीर पुत्र हैं। इन के जीवन का एकमात्र
ध्येय मेरी जीवनोपरान्त [illegible] पूर्ति करना है।" फिर
उस ने उन्हें बिन्दुक को भी पुष्पामाल भेंट करने की
आज्ञा दी और उन्हों ने तत्काल उसका पालन किया।
बिन्दुक को यह भेंट स्वीकार करते बहुत संकोच हुआ।
वह बोला "इस से लाभ? इतने
प्राणियों का जीवन इस व्यर्थ कार्य में क्यों नष्ट
करते हैं?" किंतु यह प्रश्न करने का अवकाश न था।
उस ने लाद उसकी भेंट को [illegible] उन्हें धन्यवाद
दिया। अवश्य ही उसके इस धन्यवाद से कालिदासों
को कुछ आश्चर्य हुआ। [illegible] वहां आतंक छाने
दिल्ली ने दिल्ली दाम के लिये धन्यवाद नहीं दिया था।

× ×

× ×

× ×

ऐसे ही दृश्य देखते चौथे दर्जे में पहुंचे। इस दर्जे
में चारों कविता [illegible] कविताओं वाली कुर्सियां
[illegible] पड़ी थीं; दीवालें और खिड़कियां पुष्प
[illegible] थे। और उन के रूप पुष्पमालाओं ही
के बने हों शोभा दे रही थीं। एक ओर दो पलंग
बिछे थे। भारी चोलों में [illegible] आच्छादित थीं जिन
में कुछ लंबित पुस्तकें भी थीं। एक ओर कुछ कवि
निद्रामग्न अचेत पड़े थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे
[illegible] से जागे हुए हों। महन्त को उन्हें लाते देखकर
बड़ा क्रोध आया। उसने दिल्ली को ललकारा, दिल्ली को
झगड़े से और दिल्ली को लड़ने से सम्मानित [illegible]
पुरस्कृत किया। शोर सुनकर उनके मुंह से दुर्वचनों की
[illegible] बह चली। लड़के कांपते हुए हाथ जोड़ कर
क्षमा मांगने लगे। बिन्दुक को यह बहुत दुःखदायी
[illegible] क्या करता? फिर भी उसने कहा,

"जाने दीजे! बच्चे हैं। इतना क्रोध ही क्या करते हैं।"
महन्त जी कुछ ठण्डे हुए। लड़के भी आंखें पोंछते हुए
अपने काम करने लगे। कुछ ने उन से बचा उतारने
[illegible] कुछ ने [illegible] फाड़ने। कुछ दौड़ कर
[illegible] बर्तनों में गुलाब जल ले आए और कुछ
हमाम से [illegible] हुए। महन्त जी ने [illegible]
से गुलाब जल से मुंह धोया और एक पंखा झल
जाने लगे। बिन्दुक ने भी उन का अनुकरण किया।

સેવા સદન કૃષ્ણ ૧૧૨૫

૧૦૧ નંબર

लड़की में से कुछ पता होने लगे।

कुछ प्राचीन ऋषियों और ऋषि-आश्रमों के चित्र बने हुए थे। एक शकुन्तला दुष्यन्त का भी था। बिन्दु को उन्हें देख प्राचीन अर्वाचार्यों की जीवन-चर्या का ध्यान हो आया और वह बिल्कुल मग्न हो गया। उसकी यह अवस्था कुछ क्षण तक देखने के बाद इन्दु ने पूछा,

"क्या देख रहे हो? क्या यह तुमने कभी नहीं देखे?" बिन्दु ने एक गहरा निश्वास छोड़ते हुए कहा, "देखे तो कदाचित् कई बार हैं किंतु इस समय मुझे इन ही जीवनचर्या का ध्यान विशेषरूप से आकर्षित हुआ था।"

महत्तमा। ही बोला, "इन की जीवनचर्या ने तुम्हारा ध्यान क्यों इतना खींच लिया? इस में विशेषता है?"

"विशेषता? विशेषता तो है भी और नहीं भी।"

"यह कैसे?"

"है, तो इस लिये कि उस समय गृहस्थ तथा साधुओं की तरह बनों में आश्रम बना कर रहते थे और नहीं, इस लिये कि आज उनके ये चित्र केवल मनोरंजन के साधन हैं।"

"हाँ, यह तो ठीक ही है। किंतु यह विश्वास का प्रश्न है। यदि वास्तव में परलोक सम्बन्धी बातें सच हों तब तो इन लोगों का जीवन ही अनुकरणीय है!"

"तो क्या आप को परलोक के अस्तित्व में भी सन्देह है?"

"सन्देह!" महत्तमा एक और बोला, "सन्देह क्या, यह तो निश्चित ही है। वास्तव में परलोक आदि की बातें तब ढकोसले वाली हैं। भला, यह कब सम्भव है कि ये ऊँचे-ऊँचे मोटे-मोटे लिंग पैदा होते हैं, मैथुन किये जाते हैं। प्रत्येक दूसरे वाले क्या और दूसरे वाले पुरुष परलोक जाते हैं तो वापस होते ही?" वास्तव में तो

"तो फिर आप यह मूर्ति वाला आदि क्यों बनाते हैं? इस गृहस्थी का क्या अर्थ है?"

"यह? यह तो कुछ अलग ही बात है।" ही बोला, "यह तो कुछ नहीं, मनुष्य की कुछ दुर्बलताओं की पूर्ति का साधन मात्र है। वास्तव में यह देव पूजा नहीं अपनी ही पूजा है। मनुष्य वहाँ अपनी पूजा करता है। जिस देवता से उसे कुछ आशा होती है उसी की

वह लिख सकता है। जो वस्तु उस की रुचि के अनुकूल होती है वही वह विक्रेता बनाता है।"

"तब अक्ल, प्रेम आदि दीनता वाले व्यक्ति हैं?"

"व्यक्ति नहीं तो क्या तुम उन्हें वास्तविकता कहते हो। आइवन के लिये ~~अक्ल~~ वास्तव में बुद्धिमानी की इसी में है। यदि तुम प्रत्येक बात को वस्तु की तरह प्रेम दिलाते हैं, वैसा सत्यमुच दृष्टि लगा जाय तो वह एक आपत्ति ही पड़े। — आइवन के लिये ये स्त्रियाँ, ये लाल्य साधन हैं तब इसी लिये हैं न कि तुम इन के लिये। इसीलिये में इन में से प्रत्येक वस्तु को तभी तक ~~अक्ल~~ उपयोगिता है जब तक वे मेरी प्रसन्नता को चढ़ाती हैं। जहाँ उन के कारण या उन के लिये मेरी प्रसन्नता में अवरोध ~~के~~ पड़ने लगती है, वहीं उन्हें धता बता देता हूँ। इस में सन्देह नहीं कि दुनिया में आजभी बहुत से लोग हैं जो प्रेम, कीर्ति और उन्नति के लिये प्राण छोड़ देते हैं। किंतु यह उन की मूर्खता ही है। मैं तो एक ही के लिये मरना उतना ही व्यर्थ समझता हूँ, जितना एक पुरुष के लिये मरना।"

विनुद को इस उत्तर से संतोष नहीं हुआ। वह बोला, "तब तुम आधा पौंड निर्धन दीनों को दान देगा? किस लिये कोई गरीबों को दान देगा? क्यों कोई दुनिया पर दया करेगा?" "यहाँ तो कुछ दाता भी हैं तो केवल इस लिये देते हैं कि इस के कारण उन की और उन के देश की प्रशंसा हो।"

इसी समय कुछ लड़कियाँ ~~सजधज~~ देखते और मेवे ले कर आ पहुँची। नीचे आसन बिछाए गए और मदिरा, विनुद सहित सब पास जा बैठे। एक लड़की ने आते ही विनुद के समीप आ कर कुछ आग्रह किया और वह कुछ कहने को उद्यत हुआ। किंतु तुरंत ही इसे ऐसा ध्यान आया, मानो यह तो साधारण सी लिखा बात है।

[illegible] अपना प्रभाव दिखाने लगा और अभिनेताओं के साथ विनोद की मात्रा बढ़ने लगी।

मदरीकुल
(२८)

सोकर उठने के बाद लक्ष्मानन्द दो-तीन मुहल्लों के पीछे वाले उपवन में टहलते रहे। विदुर दिनभर में ही इन्दुक और इस स्थान एवं यहां की अवस्था से इस तरह घिर गया था कि उसे नींद में यही [illegible] हुई हो। प्रातःकाल उठने पर कुछ संदिग्ध बातों को छोड़ क्रमशः यह विश्वास दिलाती थी कि वह उसी देवीहुई ईश्वरीहुई ही आई।

इन्दुक और विदुर में कि धर्म संबंधी बातें छिड़ गईं। इन्दुक ने कहा, "कलिंग में हमारे नागरिकों का कोई खास धर्म नहीं है। जिस तरह हम लोग लाभता की दृष्टि से कपड़े आदि पहनते हैं उसी तरह हमारे धार्मिक कार्य भी किया है और यही कारण है कि देवदेवी की और विशेष ध्यान दिया जाता है।"

विदुर ने कहा, "हां, दिखावे की पूजा तो यहां तक की बातों में दिखाई देती है।"

"हां, और अब तो यह रस्म हमारे को पहुंच गई है। देखो न, यहां के नागरिक जहां आधे-दो लाख गांव के बसे अब वे दो-दो तीन-तीन लाख तक से मिलते हैं।"

"क्यों?"

"इसीलिये कि ग्रामों में पुत्र लाभ न होने से बहुतों ने तो यहीं जीवन लीला का विलास और बहुत से बच्चे अभी चलना सीखें ही छूटते नष्ट हो गए।"

"नष्ट हो गए?"

"हां, कितने ही नित्य नष्ट होते हैं।"

विदुर के हृदय में मानो [illegible] घुमा दाला दुःख छा गया। उसने कुछ उत्सुकता के साथ पूछा, "ये सब [illegible] के भी किया हैं?"

"[illegible]" कह कर इन्दुक हंसा। फिर बोला "[illegible] के लिये ये [illegible] एक [illegible] के विचित्र [illegible]।"

विदुर ने इन्दुक के मुख की ओर देखा। उसमें एक विशेष प्रकार की [illegible] थी जिसका अर्थ समझने में चक्कर खाते हुए भी विदुर ने कहा, "मुझे आश्चर्य है कि ऐसी अवस्था में यहां अब तक क्रांति नहीं हुई।"

इन्दुक ने उत्तर दिया, "क्रांति तो अवश्य होती।

बा दी जाती, किंतु इन्दुमती का जादू उतरे होते हैं।"
कहते २ वह मानो दुख ध्यान मग्न हो गया।
चिन्दुद बोला, "तुम नहीं जानते चिन्दुद, वह कितनी
सीधी - हां सीधी ही वह लगती है - सीधी
दिखती है। उस के सामने जाते ही मानो मनुष्य
भेड़ बन जाता है। ओह इस रूप से जादू ने ही एक श्रेणियों
के मस्तिष्कों को उल्लू बना रखा है। कि चिन्दुद
यह कि वह किसी प्रेम पाश में नहीं फंसती।
किंतु . . . . !" कहते २ इन्दुद रुक गया।
चिन्दुद "किंतु क्या ?" चिन्दुद ने पूछा।
इन्दुद ने कहा, "किंतु कुछ दिनों से "माध" ने
एक प्रगति उत्पन्न है, वह इस जादू के वश में
नहीं आती।"
"माध कौन ?"
"माध एक विद्वान दार्शनिक है। वह ईश्वर के
अस्तित्व और परलोक को मानता है। उस के
विचार बड़े विचित्र हैं। किंतु लोगों पर उस का
बड़ा प्रभाव है। उस ने लोगों को अपने मस्तिष्क
और इन्दुमती की मुट्ठियों से सर्वथा विमुक्त
कर दिया है।"
"क्यों, उस के अनुयायियों पर यह जादू क्यों
नहीं चलता ?"
"कौन तो कौन जाने ? हां, दो कारण स्पष्ट हैं।
प्रथम तो उस की शिक्षाओं में संयम और
विलास के प्रति घृणा की प्रमुखता है, दूसरे
उस के अनुयायी उस की आज्ञानुसार ऐसे कामों
में भाग नहीं लेते जिनके द्वारा ये जादू चलता है।"
चिन्दुद कुछ विचारमग्न से आकाश को
देखने लगा। उसे स्वयं ऐसा स्मरण होने लगा
मानो यह नाम उसने पहले सुना है। इसी समय पास
के वृक्षों में हलचल हुई, मानो कोई मनुष्य आ
रहे थे। दोनों उस ओर देखने लगे। तत्क्षण एक
मनुष्य सामने आ कर खड़ा हो गया। यह कि से पूर्व
ही एक महिला ने उसे अपना परिचय देने को। इससे पूर्व
ही चिन्दुद का हृदय कांप उठा। उस के मोटे
ओष्ठ, भयानक आंखें और कुटिलता कपट सहित
मुख मंडल एवं विकृत दृष्टि मानो चीख २ कर
साक्षात से कह रही थीं कि इस व्यक्ति के मन में
कभी शुभ संकल्पों का प्रवेश हुआ ही नहीं।

इंदुमती उसे देख के भागे एक कदम बढ़ा, किंतु तत्क्षण ही लड़खड़ा कर बैठ गया। "कहो कुमार! आज किधर मार्ग भूल पड़े!"

"मैं राजकुमारी का आदेश लेकर आया हूँ महाराज!" कुमार ने कहा।

"क्या आदेश है?"

"यही कि आज अर्धरात्रि को सभा होगी। अतः आप अवश्य आवें और अपने साथ अपने भाई को भी लेते आवें।"

"क्यों? आज कुछ विशेषता है क्या?"

"विशेषता? आज कदाचित आपका साक्षात्कार होगा! अच्छा नमस्कार!" कह कर घोड़ा लौटा कुमार ने कुमार विद्युद्रथ को इंदुमती के लक्षण बता कर देखते हैं कि विद्युद्रथ ने कहा, "मैं यहां आने की बात राजकुमारी को कैसे मालूम हुई?"

इंदुमती बोली, "महतो लक्षणानि वदंति। उसे क्या मालूम नहीं होता। मन में उसके गुप्त चोर हैं। और तुम्हारे संबंध में तो वह, तुम आए उसी दिन से जानती है। उसी दिन वह तुम्हारा इलाज करने आया था और उसने तुम्हारी शारीरिक तंतुओं की परीक्षा करके कहा था कि यह राजकुमारी की सेवा में रहने योग्य है।"

विद्युद्रथ के हृदय में एक उफान सा उठता जान पड़ा, किंतु वह मन को नियंत्रण में रखा। उसमें अभी बाल अधिक थी या प्रसन्नता की। अंत में उसने पूछा, "तब क्या इसी लिये मुझे बुलाया गया है?"

"हाँ है! हाँ है तुम्हें शीघ्र ही कोई अच्छा पद मिल जाय।" इंदुमती की चेष्टा को देखते हुए महतो ने कहा। इस के बाद कि दोनों चुप हो गए। मानो दोनों इस संभावना के परिणामों पर विचार कर रहे हैं। अंत में इंदुमती ने चुप्पी को भंग किया। वह उठती हुई आगे बढ़ती हुई बोली, "अच्छा अब चलना चाहिये। अभी पहुँच जाना होगा।"

(३)

इन्दुक और विन्दुक दोनों दुकी दे चौदु में होते हुए [illegible] में आ रहे थे। मार्ग संगमरमर का बना था और दोनों ओर पुष्प उपवन एवं फव्वारों की पंक्तियाँ थीं। बीच २ में प्रकाश लगे थे। विन्दुक ने पूछा, "अन्तःपुर कहाँ है?"

इन्दुक, "भोग, आनन्द, सुख-भोग! इसका नाम दुकाली दे चुके हुए कुबाचल हुई दुकाल लाते हैं और इस दीपक दर्पकेतु पुत्र कहा जाती है।"

"पुत्र!"

"हाँ, पुत्र! अगर और एक शब्द भी प्रकट करे दे तो उसे प्राणदण्ड मिलता है।" पुत्र के विन्दुक के मुख पर भय की एक रक्त-सी रेखा दिखाई दी, किंतु इन्दुक का इधर ध्यान न था।

अन्तर्कक्ष तोरण अन्तः पुर के द्वार पर पहुँचे। दो सशस्त्र सैनिक खड़े थे। उन्होंने इन्दुक को प्रणाम किया और मार्ग दे दिया। दोनों ने भीतर प्रवेश किया। यहाँ की शोभा का तो कहना क्या था। विन्दुक को ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो वह शची-भवन में घूम रहा है। प्रत्येक कक्ष की दीवालों पर बड़ी सुन्दर चित्रकारी थी। प्रत्येक में नया ढंग था। किसी में वैशाली के बाजार, दीवालों पर प्रत्येक वस्तु बाजार की थी तो किसी में देवलोक की। किसी में युद्ध की झाँकी तो किसी में प्रेम की। विन्दुक इस वैभव को देख कर चौंधिया सा गया।

इसी प्रकार घूमते २ दोनों नाट्यशाला में पहुँचे। यह एक बड़ा सुन्दर कमरा था। कमरे के पीछे की ओर एक सिंहासन बिछा था, जिस पर छत्र लगा था। इसी सिंहासन के समीप दो छोटी एकासनी बिछी हुई थीं। उनके पीछे प्रायः २० युवा, सुन्दर [illegible] इन्दुक को देखते ही वे [illegible] आगे आई और विन्दुक को बाँह से पकड़ कर बड़ी ही ढिठाई से [illegible] आसन पर बैठा दिया। दोनों लोगों के [illegible] में लगाई गई। [illegible] के समूह के तले, [illegible] वे [illegible] गए और [illegible] के [illegible] पर [illegible] आसन पर [illegible] बैठ गए।

विन्दुक ने [illegible] वस्तु से [illegible] देखना [illegible] किया। उसने देखा कि वास्तव में [illegible] दे रहे [illegible] ने [illegible] किया था, उससे [illegible] अधिक [illegible] थी। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

लिए है। उस की दृष्टि में नदिया, दासा, प्रभाव है। ~~उसके~~ ~~व्यक्तित्व~~ में उस का कद-छि, बात-चीत का ढंग, बैठने-उठने की शैली, उस के हाव-भाव-सब में मानो एक विचित्र मोहिनी शक्ति है। किंतु साथ ही उसे यह भी भान होने लगा कि "वह उसे जानता है। कदाचित् किसी समय में उस के साथ उस का प्रेम-सम्बंध भी रह चुका है!" किंतु कब कि, कितना कुछ अंगड़ाइ आ रहा तक बहुत कुछ सोचने पर भी स्मरण नहीं आ रहा था।

इस दुलारी महुनत के साथ बातों में लगी हुई थी। हाँ, बीच-बीच में वह बिंदु की ओर भी देखती जाती थी और इससे लगता था कि वह उसी के सम्बंध में कुछ-कुछ कह रही है किंतु बिंदु दुलारी के सौंदर्य और इस रूप का अध्ययन करने में इतना तल्लीन था कि उस ने बहुत देर तक सामने रखी हुई सामग्री को हाथ भी नहीं लगाया, उस के आस पास बैठे हुए लोगों का भी पहले तो उस की ओर ध्यान नहीं गया। एक आपस में बात में लगे थे। किंतु अंत में जब दुलारी का परिचय बाला आया और उस ने पहले ही सामग्री अछूती रख इस का कारण पूछा, तब सब की दृष्टि इस ओर घूमी, किंतु उसके उत्तर देने के पहले ही दुलारी बोल उठी, "ये नए व्यक्ति हैं, और कोई बात नहीं है!" कहते उस ने अपने सम्मुख रखा हुआ भोजन उठाया और उस में से थोड़ा सा पत्तल पर बैठे हुए बिंदु के पास भेजा। बिंदु बिना कुछ सोचे-विचारे ग्रास को उठा गले में रख गया।

इस विशेष कृपा से लोगों की आँखें उसकी ओर आकर्षित किया और फलतः उसे भी बात-चीत में लगना पड़ा। बिंदु के पास बैठे हुए युवक का नाम [illegible] था। वह अनेक दृष्टियों से दुलारा से अच्छा था, किंतु साथ ही उसमें अधिक अक्खड़ [illegible] बिंदु से पूछा,

"आप कहाँ से आ रहे हैं?"

"मैं यहीं इस इलाके के लिये ही आया हूँ।"

"यह तो आप ने अच्छा नहीं किया। यहाँ [illegible]

[illegible]

[illegible]

[

"नहीं आई। हम लोग तुमसे अधिक सुखी हुए हैं। इस लोक में सहानुभूति के स्थान में दोष ही दी जाती।"

विनुद हँस कर बोला "अच्छा, मान लो कि तुम्हारा संदेह ठीक है, तब भी क्या दुर्भिट? ऐसे सौंदर्य की भूल का अवसर मिलना तो सौभाग्य की ही बात है।"

"सौभाग्य ही? यह दुर्भाग्य ही कहो मित्र!" ~~कि इसी~~ विद्रूप अपने ही को और नीचा दिखाते हुए बोला, "मैं इसी लिये तुम्हें सावधान कर देना चाहता हूँ। यहाँ तक अपने को क्या कहते बोलते हैं। विशेषतः यह दुलारी तो प्रेम नाम की किसी वस्तु को जानती ही नहीं है। इसके लिये पुरुषों की तरह हैं।"

किंतु विनुद को विश्वास न हुआ। वह सोचने लगा, "इतने सौंदर्य में, इतनी सरलता में, इतने प्रेम में और इतने विश्वास में भी इतनी बुराई छिपी रह सकती है क्या? नहीं नहीं; यदि ~~इस~~ इसका हृदय इतना कलुषित होता तो उसकी छाया इस देव-दुर्लभ सौंदर्य को अंकित हुए बिना न रहती। अवश्य ही इन लोगों के इस कथन का कारण ईर्षा है। किंतु क्या सचमुच यह दुलारी? हाँ, नाम तो है!" इस विचार ने उसके हृदय में कुछ उथल-पुथल कर दी। उसका अहंभाव कुछ डगमगाने लगा। किंतु इसी समय सहसा ही दुलारी बच्चों के दुलारी ने विनुद की ओर एक हास्य-युत कटाक्ष फेंका और उसने तत्क्षण उस उथल-पुथल को शांत कर दिया।

इधर ~~सभी लोग~~ कुछ छोटी २ लड़कियों को लेकर पड़ोस की पड़ोसिनें आ गाने लगीं। साथ ही साथ ढोलक पर थाप दे उन के सुर भिन्न २ लयों में परिवर्तित करने लगा। इस से एक नवीन ही समा बँध गया। और पड़ोस की पड़ोसिनें इन बालिकाओं को प्रायः वे स्वयं कोई हुनर सिखाती हैं और उसके परिवर्तन पर इन से दीक्षा ले जाती हैं।

इस [illegible] लगे (व) दो महीने न जाने कितने घंटे बीत चुके थे। किसी को पता न था कि रात कितनी जा चुकी है। यह किसी लगातार लोभाविष्ट की थी। फिर बिन्दु के दो तो आज हुई। नशा का उतरे हुमी ने दोनों का सिर दुखा था। एक को एक गुलदस्ता दिया था। एक को एक मुख्य मंत्री की थी। कुछ बातें की थीं। उसकी निर्भीकता और बुद्धिमत्ता की प्रशंसा की थी। [illegible] मदिरा तो प्रचुरता से चली उदारस्थ हुई थी। ऐसी अवस्था में बिन्दु के मन को तब्दील होने को एक नया मुद्दा मिल गया था। और यही [illegible] उसे न देखा हमारा ध्यान न था, प्रत्युत उचित-अनुचित का भी भान न था।

स्वभावतः ही मदिरा का प्रभाव लीला पर अपना रंग दिखाने लगा। मदमत्त सिंहासन के एक कोने पर सिर को अंधने लगे और दूसरे महमान अपनी बैठकें फैलाने लगे। कोई कुछ गाने लगा तो कोई कुछ अंटशंट बकने लगा। किसी ने कौतुक किया दी तो किसी ने ठट्ठा लगा कर हँस दिया। हुमी अपने की अधिकता हो चली।

बिन्दु का फाँसी की असली बात पर लाने में कोई तीर न चला।

इसी तरह सारी की बातचीत चल पड़ी। एक ने कहा, "अभी तो पाया है।" हुमा बोला "कुछ तो [illegible] ने अभी तक उसे [illegible] को [illegible] बोला "इसका [illegible] तो [illegible] को [illegible] ने [illegible]" बिन्दु का [illegible] एक ओर की बात है। वह कुमारी [illegible] दूसरी ओर की बात है। उस ने कुछ दी। और [illegible] बहुत [illegible] अकेले में नहीं दी। [illegible] तो [illegible]

[illegible]

X तुलसी ने माने अपने देवर को दिखाने ही चेष्टा
करते हुए कहा,

"अलिन्द ! मैं समझती हूं कि तुम इस
संसार के लिये आवश्यक हो चुके अधिक कुछ दिन भार
हो गए हो। तुम देवताओं की तरह निष्क्रिय बन कर
रहते हो और ऐसी अवस्था में तुम्हें अवश्य स्वर्ग
में स्थान मिलना चाहिये। अवश्य ही इससे
मेरी इस सभा में एक सदस्य की कमी होगी, किंतु
कोई चिंता नहीं, मैं उसे सहन कर लूंगी।"

तुलसी के माने अलिन्द का सारा नशा उतर
रहा। वह आंखें मलता हुआ, इस तरफ देखने लगा,
माने उसे उसने जो कुछ सुनाये, उस पर विश्वास
ही नहीं हो रहा है।

X दुख है। इस के विपरीत ग्राम्य सौंदर्य देखने में आता है। देखो न, कैसे कितनी सुख दुखों के बीच का [illegible] होता है? यह [illegible] कितनी सुख है? और दुख कितने कितनी मधुर है? अतः

Y कि सुख ही और दुख को बोल, "इतना मत [illegible] तुम आज स्वार्थ से एक से बड़े हो भी बन [illegible] तुम ने धर्म का लोप कर दिया है। उसे स्वार्थ का साधन बना डाला है। किंतु याद [illegible], एक दिन तुम्हारी भी यही गति हो सकती है।"

"शिवो! यह प्रेम नहीं है, दुर्व्यसन है। अतः अविलम्ब
[illegible] इस अभिशप्त को मुक्त करो।" तभी से मत पूछो उसे
जब तब वह विदर्भ के नीले क्षितिज में [illegible] हो ने
देख ले तब तब उसे दुःख सहन करने [illegible] उस
ने अपनी देह का दाह किया था।

इस संसार में सौंदर्य और शृंगार ही आदमी
जितने कुरूप होते हैं उतने और किसी चीज़ की आड़ में
नहीं होते।

[illegible] को [illegible] मां के [illegible] देखते ही उसके [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

"क्या तुझे अल्ला मियां ने इस लिये हुक्म दिया है कि तुम लोगों को अपने अक़ीदे के मुताबिक़ भी न रहने दो! क्या तुझे रहमदिल होने से ख़ुदा भी कहीं और तुझे रद्द कर सकते हैं? सोचो! तुम किस युग में आए हो! जो तुझे भी आदमी नज़र से देखता है। तुझसे भी उतनी ही नफ़रत करता है जितनी हिंदुओं से। सोचो! इस के रहने में आख़िर तुम यह अज़ाब क्यों लाए हो? ये तुम्हारी कमाई का फल है ज़रूर। हिंसा के बदले भी तुम्हें क्या मिलते हैं?" मुसलमानों ने सिर झुका लिए और वे चले जाते का अवसर देखने लगे।

तड़का कि इक्का दुक्का हिंदू और आगे नवाब की बेगम एवं पीछे पीछे सौ डेढ़ सौ मुसलमान इधर आते दिखाई दिये। वे लोग इस घटना को छुपाना चाहते थे किसी ने चिल्ला कर कहा, "रुक जा! कोई आदमी हाथ न डाले। इन्हों ने अभी मस्जिद को छुआ भी नहीं है!" लोग रुक गए। नवाब ज़ादी ने अब तक इतिहास को देखा ही न था। अब उसके दो हाथ से ख़ून बहते और उन्हें शांत भाव से खड़े देखा तो भक्का उड़ी। एक दम दौड़ कर उन के पास पहुंच गई। किंतु इतिहास ने कहा, "मेरे हाथ रक्तरंजित में अभी किसी से कुछ मत कहो बेटी! लोग भड़क जाएंगे तो और ख़ून ख़राबी होगी!" कह कर उस ने एक बहते अपना कटा हाथ दिखा। इतने में आने वाले मुसलमान चुपचाप अपने घरों को लौट गए और आबादी में आगे न बढ़ने का अहद किया।

नवाबज़ादी

है, हिंदू को लिखे के पश्चात। अब तक मैं नहीं जाऊँ तब तक तुम शान्त रहो।"

हरिदास के ये बातें कभी लिख नहीं हुई। उन्हों ने कितने ही मुसलमानों को विदा किया। कितने ही सोचने लगे, "बात तो ठीक है। खुदा तो एक ही है, नाम कितने ही हैं! और तक यह हमारी कुछ इस लिये हाथ नहीं उठाता कि तुम भी उसी खुदा के बन्दे हैं, तब हमारा क्या फ़र्ज़ है?" लेकिन को ने देखा कि काम बिगड़ने वाला है। अतः उन्हों ने तलवार को कहा, "अरे देखते क्या हो? मारो दाढ़ी को। इस की बातों में न भूलो। क्या भूल गए कि यही दिलवा को धोखा देने वाला है।"

इससे लोगों में कि जोश हुआ। किंतु हरिदास ने कि कहा, "हां ठीक है। मैं ने ही दिलवा को इलाज दिया था। लेकिन दिल लिये? दिल तो लिये नहीं! यह मुसलमान था मैं हिंदू। मैं ने उस का इलाज भी इसी लिये किया था कि यह भी उसी मालिक का एक बंदा है। यह भी हमारा भाई है।"

लोग कि दुविधा में पड़ गए। इस के लगनाओं ने क्रोध का दिखाला न दिया। एक ने अपनी तलवार चला ही तो दी। देखते ही देखते हरिदास का बाँया हाथ कट के गिर पड़ा। किंतु हरिदास वैसे ही शान्त खड़ा था। उस के मुख पर वही शांति थी। वही चैन था। वही मुस्कुराहट थी। तलवार लगते ही उसने कहा, "इसका तुम्हें साक्ष्य दो, अपनी सचाई का रास्ता दिखावे।" और कि दूसरे हाथ से मार्ग रोक के खड़ा होगया।

तलवार चलाने वाला यह देख के हिल उठा। उस का क्रोध हवा होगया और तलवार हाथ से गिर पड़ी। वह मन में सोचने लगा, "यह शख्स तो अकेला मामूली आदमी नहीं है। ऐसे आदमी का खून खुदा कभी माफ न देगा।" यही बात हरिदास का दूसरा हाथ और शान्त मुख मण्डल देख की भी आई और उसी के हृदय में सच्ची भाव क्रांति प्रारंभ हो गई।

महला हुआ! हुआ! क्या हुआ सच्चा और नकली हाथ के तलवार गिरने आती चिल्लाहट की। सब लोग इकट्ठे हो गए। नवाब आदमी ने एक ऊंची जगह पर खड़ी हो कर मुसलमानों को चिल्ला कर कहा,

माने बिन्दुक के शरीर में बिजली दौड़ गई। उसके
हृदय की धड़कन की गति तीव्र हो चली
और नथुने फड़कने लगे। दूसरे क्षण स्वर्ण-
मयी उसे पुनः प्रसन्न पाकर लौट गई। किंतु उस की दृष्टि
बालक बिन्दुक के मुख पर जमी हुई थी। ऐसा प्रतीत होता
था माने वह कुछ कहना चाहती है। बिन्दुक चीज़ों
की ओर आलोचक दृष्टि से देख रहा था। उसने देखा,
स्वर्णमयी की इस समय की दृष्टि में कुछ नई, मीठी
बात थी। इस समय वह पहले से कहीं अधिक
सुंदर, अधिक मधुर और अधिक स्नेह मयी दिखाई देती
थी।

अन्त में माने उसने हठात् बालक से कहा, "बिन्दुक!
बिन्दुक!" कहते-कहते माने चौंक गई।
कदाचित बिन्दुक ने उसकी ओर देखने लगी। बिन्दुक
भी माने किसी अज्ञात शक्ति से आकर्षित हुआ सा
बढ़ा और उसके दुग्ध को अपने दोनों हाथों में लेता हुआ
उसे से बोला, "लो माँ।" स्वर्णमयी ने नहीं
पहले की हिचकिचाहट नहीं दिखाई। वह, जो अभी
नहीं। केवल चुपचाप बिन्दुक की ओर देखती रही
थी बिन्दुक के मन के उस चित्र से खेलते रही
न जाने कौन से विचार उठ रहे थे। वह बोली,
"स्वर्णमयी! कहो तुम्हारे क्या चाहती हो? क्या
जल्दी बोलो! क्या कि मेरे हृदय में कुछ पुरानी
स्मृतियाँ बड़ी उथल-पुथल मचाए हैं। मुझे तेरी
इस मोहक दिव्य रूप की आँखों के देखकर लगता है कि
है। सच कहो, क्या हम पहले नहीं मिल चुके हैं?
क्या हमने पहले कहीं से प्रेम नहीं किया था और
किसी ने हमें धोखा नहीं दिया था? न समझ सके
के विवश कहते हैं? या मेरा मस्तिष्क किसी गलतफहमी
किसी भ्रम में [illegible] शरारत पूर्ण खेलता है दिन बहुत
तरह से [illegible]
उस ने स्वर्णमयी का हाथ कुछ जोर
से दबाया।

स्वर्णमयी उसकी ओर देखती रही। "माता बिन्दुक, तुम्हें
बहुत कुछ स्वप्न दिखाई देते हैं। मालूम होता
है, तुम्हें [illegible] अच्छा, यह बताओ कि
तुम मुझे देखकर [illegible] कहाँ?"
बिन्दुक इस प्रश्न से कुछ असमंजस में पड़ा। वह
सोचने लगा।

"हाँ, बोलो न तुम इतने [illegible] क्यों हो गए?
और उस के [illegible] क्या है?"

"हाँ, इसी को [illegible] कहते हैं। मैं [illegible]
की [illegible] कहते हैं। [illegible]
यही बिन्दुक का प्रेम से अभिप्राय था। [illegible]
में। किंतु स्वर्णमयी जिस [illegible]
को कुछ [illegible] यहाँ तक कि उस की [illegible]

का संचार किया और वे मस्जिद की ओर बढ़ते हरितारी
होने लगे।

किंतु हरिदास के सामने एक नई समस्या खड़ी हो
गई। मस्जिद के सामने पहुँचते ही काली चट्टान तो उन्हें
ने निश्चय को शिथिल। किंतु "संग्राम करके मस्जिद की
रक्षा करूँ या निश्चय-प्रतिज्ञ हुए" इस प्रश्न
ने उन्हें उलझन में डाल दिया। उन्हें इस से कुछ
भी संदेह न था कि "हिंदू (एक है) हिंदू हो या
मुसलमान - सब उसी की संतान हैं। चोट मस्जिद में
दी जाय या महजिद में - सच्चे दिल से की हुई सबकी
प्रार्थनाएँ उसी के चरणों में पहुँचती हैं।" तो फिर
मैं "एक भाई का दूसरे के विरुद्ध हाथ उठाना धर्म है
क्या? माना एक भाई ग़लती करता है, किंतु उस की
सजा उसे मिलनी चाहिये क्या? तब क्या अत्याचार
को मूक होने दें? मूर्खता को निर्बाध अत्याचार
करने दें? क्या यह पाप दृष्टि से बड़ा नहीं होगा?

इन दुहरी प्रश्नों ने उन्हें असमंजस में डाल दिया।
उन का एक तर्क कहता था कि "जहाँ मैत्रिक बल से धर्म
रक्षा संभव न हो वहाँ पशुबल से भी धर्म-रक्षा
तो करनी ही चाहिये।" दूसरा कहता था, "नहीं, पशु
बल-प्रयोग पशुओं ही के लिये विहित है। मनुष्य
के लिये नहीं। मनुष्य प्राण दे सकता है, ले नहीं
सकता। उस का प्राण देने में ही धर्म की रक्षा है।" अंत में हरिदास ने
निश्चय किया कि अपने लिये विचलित हुई मति को
वे मस्जिद की सीढ़ियों पर लाठी हाथ में
खड़े हुए। भीड़ियों का दल आया। आगे आने
वाले एक व्यक्ति ने कहा, "हट जा के रास्ते में से।"
हरिदास ने पहले उन्हें समझाने की चेष्टा की,
किंतु व्यर्थ। भीड़ में
इस हिंदू की तरफ से आगए।

हरिदास ने चिल्ला कर कहा, "तो सुनो! मैं
प्राण देते तुम्हें मस्जिद को हाथ न लगाने दूंगा।
हाँ मैं मानता हूँ कि मानव एक है और इसलिये
इंसान-इंसान सब भाई हैं। अतः तुम भी मेरे भाई
हो। ऐसी अवस्था में मैं तुम्हारे ऊपर हाथ नहीं
उठाऊंगा, लेकिन अपनी जान देते तुम्हें यह
गुनाह भी न करने दूंगा!" फिर हिंदुओं से कहा,
"यदि तुम में मेरा अनुकरण करने का साहस नहीं है तो
तुम्हें संग्राम करके धर्म-रक्षा करने का अधिकार

बिन्दु के आंखों से सहसा झरने लगी - कांपती, "ओह! तो तुम्हें मुझसे प्रेम है?"

बिन्दु प्रेम शब्द को सुनते ही मानो बिन्दु फिर खड़े से भाग पड़ा। वह एक दम खड़ा हो गया। कांपा "प्रेम? - क्या वह वास्तव में प्रेम था जो कुछ देर को मेरे मन में पैदा हुई थी? - प्रेम या केवल विजय वासना? बिन्दु मन में सोचने लगा, "अवश्य ही प्रेम एक पवित्र गुण है। उसका विजय वासना से सम्बन्ध? और अभी अभी तो कविता को देखते ही हृदय में प्रेम का विकास हुआ है।" बिन्दु उसे दुहरी पड़ी हुई एक कविता पढ़ी, "इच्छा पूर्ति की आकांक्षा और प्रेम दोनों परस्पर विरोधी हैं।" वह कहने लगा, "ओह यही वह भावना तो है? इच्छा पूर्ति की आकांक्षा ही तो तब मेरे प्रेम का भंडार था लोभ का दास।" वह बिन्दु में इतना डूब गया कि क्षण भर के लिये लवंगलता को भूल गया।

बिन्दु लवंगलता ने कि प्रश्न किया, "क्यों, चुप क्यों हो गए? अब तुम्हें मुझसे प्रेम है तो निःसंकोच कहो।"

बिन्दु का भाव ध्यान भंग हुआ, उसे दीखा कि लवंगलता की प्रेम भरी दृष्टि से बिजली और वह उसके कंधों पर हाथों का भार ज्वालामुखी सा बैठ गया। लवंगलता ने कुछ न कहा। बिन्दु मानो अनिमेष दृष्टि से उसे दीर्घ सुधा पान करने लगा।

इसी दशा में कई क्षण बीत गए। लवंगलता को लगा कि बिन्दु को। किंतु कुछ ही क्षणों में उसे याद आ गया कि उसे मिलने की आतुर आंखें। वह उठ के प्रेम मंच को अलविदा होने ही जा रहा था कि उसे मिलन की अभिलाषा याद आ गई। फलतः वह देवी देवता को बड़ा दुखी और कोसी,

"देव! नहीं नहीं लवंगलता! प्रेम तो हृदय की [illegible] तो अबोध बच्चों में या स्वर्ग के देवताओं में। अरे तेरा प्रेम तो छलमयी है तू जो दूसरों के अपने दुख के लिये [illegible] और उनके दुख में सुख मानती है उस के लिये प्रेम? [illegible] में तेरी ओर देखा है तब से हृदय में [illegible] उठती है। किंतु निश्चय ही वह प्रेम की नहीं है। [illegible] में कोई विचार नहीं होता। अभीप्सा नहीं होती। प्रार्थना नहीं होती। वह व्यक्तित्व के लिये नहीं होता। अतः उस आंधी में हम उड़ने लगे तो अच्छे ही उड़ें, किंतु हम उसे प्रेम का नाम नहीं दे सकते।

बिन्दु के ऐसी बातें सुनकर तो लवंगलता के [illegible] अरे ही हृदय से बहुत दूर हो गई। बिन्दु लवंगलता को देखने लगा, लवंगलता की [illegible] उसे [illegible] कुछ देखी होती हुई सुनाई दी। बिन्दु को ऐसा प्रतीत होता है कि [illegible] ने तुझे [illegible] बनाया है। तुम, जो तड़पती हो, [illegible]

दिया। इतने में नवाब की
भय लगा कि कहीं हरिदास को शांति न हुई। उसे
अतः उसने हरिदास को भी अकेले में कुछ
दे। इस बात को प्रकट न करते हुए हिदायत दी
हरिदास तो पहले ही गुप्तचर था। अतः इस
हिदायत ने केवल नवाब के आत्मविश्वास को
विशेष रूप से प्रकट करते आधा ही काम किया।

(४)

कमला: उधर एक घटना हो गई। वर्ष बीत गए।
दिलावर खां ने अपने शत्रुओं पर धावा बोल दिया।
ईमान को दिया। जिस पर खान पड़ा उन में से
एक नवाब गुलिंदा खां के सामने आई और बोली
इन्हें दिल्ली तख्त पर बैठा लगा गया कि दिलावर
खां ही जान बचा कर ऊँचे चढ़ने वाले हैं
दास हैं। उसका दिलावर खां पर तो कुछ बस
चला नहीं अतः हरिदास से बदला लेना चाहा। इस के
लिये गुलिंदा खां से सलाह ली गई। वह तो
इस काँटे को किसी तरह हटाना चाहता ही था
पूरा रूप से सहायता देने को तैयार हो गया। फिर
बातें तय हो गईं।

कुछ दिन बाद एक दिन गुलिंदा खां
ने पास के एक जंगल में अपनी बातों के लिए
मुसलमानों को दावत दी। लोग इकट्ठे हो गए
नवीन हृदय में एक अतिरेक से उमड़
आया।

उधर जब तक वे गए तो उन के साथ जो
आई थे आदमियों ने मस्जिद
हरिदास इस का बदला कुछ
ने इसे साधारण मुसलमानों की हत्या
कर्मठ। मुसलमानों की संख्या अधिक थी
ही हिन्दुओं ने हरिदास जीवित जाने दीवार
दी। वे लोग भी इससे बहुत थक गई थे।
किंतु हरिदास ने उन को आड़े हाथों लिया। उसने
कहा, "तुम में पुजारी और हिंदू कहलाने
को सर्वोपरि मानता है, तब किस मुंह से अपने
जीवित रहते धर्मस्थान दे। अब हो
है? तुझे धर्म से अधिक प्राण प्रिय हैं तो तुम
चले जाओ, मैं न जाऊंगा। मैं तो यहीं
देखा ही पड़ेगा।"

हरिदास की इस दृढ़ता ने हिन्दुओं में भी दृढ़ता

किया करते हो, किंतु हम लोग वर्तमान वही अतीत
होता है। किंतु तुम्हें मालूम नहीं है कि उस ने कैसे
रूप कैसा दुख उत्पन्न लगाया था। वास्तव में मैं
ने आज पहले-पहल प्रेम-पथ में पैर रखा है।"

किंतु विंदु ने कोई उत्तर नहीं दिया। उस ने
मानो उस की बात सुनी ही नहीं। अतः उस चुपचाप
स्वर्णमयी ने कहा, "चलो अब। शांत हो कर पास
बैठो और एक बात को हृदय से निकाल दो अब।
हो, यदि तुम्हारी यह कोमलता देखने दिखावटी हो और
तुम मेरे निकट आने से डरते हो तो दूसरी बात है।"

"डरते हो!" इन शब्दों ने मानो विंदु के दोनों
में दो प्रेम की गहरी चोट कर दिया। उसने स्वर्णमयी
का हाथ पकड़ लिया और बोला, "डराती? तुम से?"
किंतु कुछ और कहने लगा। "सचमुच ही कोई
पुरुष तुझसे डराता है किंतु मैं नहीं डरता। कारण कि
मैं तुझे आज से नहीं, बहुत दिनों से जानता हूं। वास्तव
में तो भय नहीं, पुराना विश्वास खोल मुझे फिर
विचार में डाल देता है।" कहते-कहते वह रुक गया।

स्वर्णमयी ने भी एक निश्वास छोड़ी। फिर
बोली, "यह सब तो भ्रांति है। क्या इसे भूल कर तुम
सुखी नहीं हो सकते? क्या यह असत्य का मिलन
इसी क्षण से हटाकर नष्ट हो जायगा?" कहते
हुए उस ने एक विशेष दृष्टि से विंदु की ओर देखा।
विंदु को भी इसका अर्थ हृदय में बहुत धीमा-सा
दो बेगसे चलती हुई जान पड़ी। वह कुछ भ्रमपूर्ण
स्वर से बोला, "सुखी?" हां

"हां, जिसका और कोई, वे विद्या को पाकर सुखी
होते हैं?"

विंदु ने फिर एक बार अपनी मलाई आंखें दी और

"जिसका और कोई, वे विद्या को पाकर सुखी होते
अर्थात पुरुष सब से भूल जाते हैं? हां, वह
सुखी हो सकते हैं।

स्वर्णमयी ने इसका कोई उत्तर न दिया। विंदु
के गले में हाथ दिया और बोली, "तुम भोला नहीं
हो। मैं तुम्हें सब नहीं, सारा विद्या देने आई हूं।
यह ज्ञान, यह वैभव, यह कीर्ति, यह ऐश्वर्य, सब
तुम्हारी होगी। और यह सब देने में एक बात
मानती हूं।"

इस पर विंदु ने मानो स्वर्णमयी के मुख में
तर्क ही हो गया। उसने कहा, "यह स्वर्णमयी
ने किस से क्या कहा? क्या यह
क्या पहले भी मैं ही मोहन का मन
न हरता था?"

नवाब ज़ादी

(२)

नवाब साहब है भी एक लड़की थी। उसकी घटना के कोई छः मास पश्चात नवाब की बेगम को लड़की बड़े की दी निशानी ले लौट रही थी। साथ प्रायः २० सिपाही लगा थे। अकस्मात दिलावरों ने धावा मारा। सिपाही, लगा कुछ मारे गए कुछ भाग गए। बेगम और नवाब ज़ादी गिरफ़्तार हो गई। इतने में दिलावर लोग घोड़े ही ही गया था कि हरीदास मिल गए। देखते ही दिलावर को घोड़े पर से उतार और हरिदास से मिला। कुछ इधर उधर की बातें होने पर बेगम और नवाबज़ादी का ज़िक्र किया। हरीदास ने कहा, "लो साहब आपकी दुश्मनी है तो नवाब से है। इन बेगुनाह औरतों पर यह आफ़त क्यों?"

दिला०- "दुश्मन की औरत, लड़की और माल्लिमत तो ख़त्म करना ही चाहिये। यह तो दुश्मनी नहीं मर्दानगी है।"

हरी०- "नहीं लो साहब! धोखा देकर जंगली जमाने की बातें हैं जब औरतें भी मर्दों की मालिमत समझी जाती थीं। अब तो यह लालिमा गुलाम है। आप बहादुर हैं; ऐसी बातों से दूर रहना आप को अच्छी नहीं हुई पर बहादुर नहीं लगाना चाहिये।"

दिलावर लो ने कहा, "मीर हरीदास जी! मैं ग़लती पर था। तुम्हारे कहने से मैं इन्हें छोड़ता हूँ। क्या डर नाहक़ दोनों को बदनामी लेने वाला मारना चाहिए। बुढ़िया ला पाऊं निशानी कहां उसे मुझे दिल नहीं मानता।

हरीदास बेगम और नवाब ज़ादी को अपने साथ लाया और अंधेरा होने पर सुरक्षित उन्हें आराम बाग़ में पहुंचा दिया। साथ ही कह दिया कि इस सम्बंध में नवाब से कुछ न कहें। डेरे में भी किसी को पता न चला।

बेगम ने नवाब से सब बातें कहीं। नवाब को सुन कर ख़ुशी नहीं हुई। "जिस बेगानी की लड़की पर उसके कुटुम्बियों की दृष्टि लगी थी उसने उसकी औरत और लड़की को बचाया, यह ख़ुशी की बात है। जो इस बात को नहीं जानते उन की नज़र में भी इस बात से कुछ ही मेरी इज़्ज़त तो कम होगी ही।" अन्त में उसने भी बेगम और लड़की को हार्दिक धन्यवाद दिया और सामने उपस्थित न होने की हिदायत की। डेरे में यह सब हुआ। दिला दिलावर ने उन्हें लाया है।

स्वर्णमयी ने उत्तर दिया, "हे यह ले बुद्धि तलवा अं वह दुःख है। इसलिये उसके दो टुकड़े न दो!" इंदु का उत्तर सुनते असमंजस हुआ था। बिंदु ने देखा, इंदु के चेहरे का भाव अभी बदला नहीं है। बिंदु इस प्रस्ताव से खुद है। मानो बिंदु के दो माँ (माता) वह इतनी इंदु सही,

बिंदु ने

स्वर्णमयी बोली, "बिंदु लिये? वो लिखे। तुम नहीं जानते। इंदु मुझे चाहता है। यद्यपि वह उससे छोटी है और वह अभी बच्ची है, तथापि उस पुरुष के प्रेम की पूर्ति है, किंतु साथ ही उसका जीवन पर बड़ा प्रभाव है, इस लिये वह उसके हृदय के अंतस्तल में बड़ी है। इसलिये यही आवश्यक है कि वह इसके साथ ही दूसरा विवाह करे।"

किंतु बिंदु कि भी चुप है।

स्वर्णमयी ने कि कहना क्या विवाह में इस अविलंब की गति के, यह नहीं सकते हैं। किंतु ऐसा होने से इसकी बच्चा हो जाने का भय है। कि तुम [illegible] के यह नाश हो गया। यह बालक कितना सुंदर होगा। [illegible] तुम्हारे समान ही [illegible] यौवन [illegible] देखा। वह कि [illegible] यह सौंदर्य, यह [illegible] नैराश्य - सब तुम्हारे होंगे। कि इस निश्चिन्त हो के आनन्द [illegible] सुख से [illegible] कहते हुए उसने बिंदु के गले में हाथ डाल दिये।

बिंदु की [illegible] उसकी आँखों चारों ओर नाचने लगा। वह मानो मन्त्रमुग्ध हो [illegible] किंतु कि कुछ [illegible] उसके मुख से [illegible]

फिर स्वर्णमयी ने कि [illegible] इसी [illegible] इस है आने का [illegible] बाप नहीं हो सकता। यह [illegible] नहीं। इसने [illegible] नष्ट किया है। वे इस [illegible] बातों [illegible] इस [illegible] हो [illegible] समझ लेती है और यह उसके जीवन [illegible] विघ्न होता है। वे इसको [illegible] तोड़ देती हैं और यह [illegible] अपने ही सिवाय [illegible] बना [illegible] निकाल देता है या [illegible] कर डालता है।"

[illegible] बिंदु [illegible] बातों [illegible] बिंदु [illegible] अधिक [illegible] हो [illegible] बहुत [illegible] बात [illegible] चुका था और [illegible] उसे [illegible] इस समय [illegible] उसे [illegible] थी। इस समय यही [illegible] कि [illegible] उसे [illegible] इसी समय स्वर्णमयी ने कहा, "माँ! [illegible] बिंदु ने [illegible]

नवाब आदि

रिज़िया एक मज़बूती दिखाव पढ़ने बैठ गई है।" रामदेवी दूती के साथ होली, किंतु जब पर्दा उठा तो भीतर गई तो दरवाज़े में घुसते ही रामदेवी को मालूम हुआ कि कमरा तो खाली है। वह कुछ सन्देह में पड़ ही रही थी कि दूती बोली, "आओ ना! किसी चोर हो गई! लौंडी साहब इस कमरे में हैं।" किंतु रामदेवी को सन्देह हो चुका था। उसने कहा, "नहीं! मुझे लौंडी साहब से दरीनों की ज़रूरत नहीं है।" कहकर वह उल्टी पाँव लौट पड़ी। सड़क एक क्षण की आड़ में से निकल कर नवाब उसके सामने आ गया।

हम कह चुके हैं कि रामदेवी साहसी लड़की थी। इस पिछली घटना के बाद वह नवाब को एक चुटकी बजाने में छिपा सकती थी। इसलिए उसने डर दिखाया। नवाब को झपटते देख उसने कटार खींच ली। नवाब साहब चौकड़ी भूल गए और झपटते २ ही वे पीछे को हटने लगे और रामदेवी उन की ओर क्रोध से देखती २ वहां से बाहर निकल गई।

रामदेवी एक सांस में घर पहुंची और सब बातें अपनी माता को कह सुनाई। इतिहास तो घर पर था नहीं; माता ने पढ़ाने को कह दी। पढ़ाई सुन कर अगले दिन [illegible] उसी वक्त आगरे को रवाना हो गया। नवाब और रिज़िया तो मिले नहीं, वह दूती पहले पहुंच गई और रिज़िया के बाप का सारा क्रोध उसी के सिर पड़ा। उसने [illegible] दिया कि दो दिन में [illegible] पड़ी है। बिचारा वहां पहुंचा। किंतु वहां पहुंचते ही उसे बड़े २ सरदारों ने घेर लिया और लगे समझाने। दिल्ली के इज़्ज़त का [illegible] दिल्ली ने नवाब की तारीफ़ की। दिल्ली ने उसे [illegible] दिखाया, दिल्ली ने जागीर दी।

अन्त में जब तो उसे अच्छी जागीर और ४०० आदमी रखने के काम को मुंह बंद कर दिया गया। इस इतिहास, उसके नवाब ने माफ़ी मांगी और [illegible] में इसी तरह मुलाकात न करने का वचन दिया। इतिहास ने भी उसे क्षमा कर दिया।

नवाब जादी

ये लोंडियाँ कई लाती थी, किंतु उन का बातादिह कार्य यही होता था। नवाब ने उन्हीं में से एक दे सुपुर्द यह काम किया। वह अनेक बहानों से उन्हें लाने लगी। और इस लड़कियों से मिलने लगी। एक दो को अवसर पा के उस ने नवाब के महल की तारीफ की और महलों को देखने की इच्छा उन में पैदा कर दी। किंतु इस संकेत में वे पहले ही सावधान की गई थी। फलतः उस की बात न मानी। अंत: अब उस ने दूसरा तरीका निकाला। दो या तीन दिन का अंतर दे के एक दिन उन्हें ने एक दूती दी। [illegible] नवाब के ग्राम से मिले हुए "आराम बाग" की [illegible] दूती दी बसंत का [illegible]

अंत के इस का प्रभाव हुआ। दोनों लड़कियों ने उसे देखने की इच्छा प्रगट की। उस ने कहा, "उस के सामने बड़े बड़े आदमी घोड़े देते हैं। नवाब ने अपने आराम बाग वाले महल में महीना [illegible] दिल्ली की दासी नहीं देता। मैं तो उस की मुँह बोली हूँ, इसी लिये तुम्हें ले उस के दर्शन करा सकूँगी।"

दोनों लड़कियाँ उस के साथ बाग में पहुँचीं। दूती ने कहा, "एक एक दर्शन को तरसती हैं!" कि सामने पड़ा हुआ पर्दा हटा के कहा, "इसी में हैं!" अब यह समस्या उठी कि पहले कौन जाय! अंत में [illegible] को पहले जाना निश्चित हुआ। दूती उसे [illegible] दस मिनटों में पहुँचा के वापिस चली आई। कुछ देर तक तो रामदेवी को उस की लम्बे दो बातों में उलझा रही, किंतु कि उसे [illegible] का ध्यान हो आया। उस ने पूछा, "[illegible] इतनी देर तक क्या करती रहीं? आई नहीं?"

दूती बोली - "आती होगी! कुछ बातें करने लग गई होगी!" कह कर उस ने कि नहीं हटाने शुरू की। किंतु तड़ुत ही हो जाने पर भी [illegible] प्रश्न उठाया। दूती सोचने लगी कि अब टाल-मटोल की तो हो सकता है कि [illegible] अतः वह कह उठी कि "जाती हूँ, देख आऊँ क्या कर रही है।"

xx xx xx

कुछ समय पश्चात दूती लौट आई और दोनों से चलने [illegible] उन्हें भी लाने की इजाजत दे दी।

X "बहू दिखाऊ बनो लेकिन कुछ लाज पिये हुए
दिखाऊ मनुष्य के हृदय की बात कहू देता है? श्री
श्री और विदेशी की बातें बता देता है? गड़ा
धन दिखा देता है? स्त्री के दूध बना देता है?
गाय को दूध दो देता है।
बोल बहू सुनती।

बड़ियां तो कौवा ले गया दीदी ने
भी इस विचित्र पक्षी को देखने को उत्सुक
हुई और पूछा कि "बहू ये दिखाऊ है?"
दूती बोली, "दीदी जी! भगवान ने आराम बाग
महल में! वह क्या छोटा-मोटा आदमी बोलते
है। उस के सामने बड़े बड़े नवाब कांपते
देते हैं! वहां में तो वह पैर ही नहीं रखता।"
आराम बाग हरिपाल के मन्दिर से थोड़ी दूर
ग्राम के बाहरी हिस्से में बना हुआ था और सब
प्राय: नगरिक जाते आते रहते थे। साथ ही लड़
-कों के सात पिताओं ने उन्हें नवाब के नगरस्थ
महलों में जाते को मना किया था, आराम बाग में
नहीं। ऐसी अवस्था में उन्हों ने वहां जाने में कोई
हानि नहीं समझी और उस के साथ हो लीं। अतः

फूल तोड़ने के बाग बीचों बीच आने लगी। साथही
पुतलियों से बातें छेड़ दीं। कभी इतनी बेड़, कभी
वह पुतलियों को तोड़ने लगी, कभी

अवगुण। कभी बहू को कभी उसकी दी गई सुनाने

नवाब साहब

उसी समय तो आप देवल शांतमें प्रसन्न हुये की कोशिश करिये।
कहते हैं हरिदास उठे और एकतारे पर भजन
गाते हुये उधर ही दौड़ पड़े। उन्हें ने देखा ही थी
कि एक गड़रिया बकरियां हांकता हुआ आ रहा है। वे उस
की ओर चले। गड़रिया उन का शिष्य हरिदास ने मुस्कुराते हुये कहा कि उसी के लोटे में
बकरियों का दूध निकाल ले आये। उन्होंने
दूध गरम करके
दिलावर को पिलाया। उस
दिलावर को दो बीं आ गई। बहुत सा गया। हरिदास
औषधियों की खोज में चले।

× × × ×

क्रमशः दिन आते हुआ। दिलावर खां की
आँखें खुलीं। इसी समय उक्त गड़रिया का हुये
हिंदू युवकों के साथ एक चारपाई लिये आपहुंचा।
सब ने सिवका सावधानी से दिलावर खां को उस
पर सुलाया और उसका हरिदास के घर चले
गये। दो सप्ताह के दिलावर खां को आराम हुआ
हिंदू सिपाही को कानों-कान खबर न हुई। चंगा होने पर
दिलावर खां ने हरिदास का ~~जयकारी बना~~ धर्म बन्धु
बना लिया।

(५)

हरिदास की एक लड़की थी। नाम था रमादेवी।
अवस्था अठारह वर्ष : २८ वर्ष की थी। ग्राम : इसी
उस की हरिदास ने पढ़ौती। बहुत लगन लगाकर
थी। नाम था लिज़िया। दोनों ही लड़कियां
दोनों में गहरा प्रेम था। दो, एक अन्य था। रमादेवी
दो उसकी माता ने परिस्थिति के अनुसार निर्णय
की बात बनाया था, किंतु लिज़िया मुख मोड़ता
थी कि अभी दोनों
ने बालिकाओं को एक भाई
लिज़िया हरिदास से
हिंदी पढ़ती थी
निकालना सीखती थी। इस समय

अचानक एक दिन उधर से नवाब मुजफ्फर
दोनों लड़कियों की
उस ने देखा और उन के नाम पूछे। माल मुझे
पिछवाड़े के खिड़की वाले मकान में ले गये। इसी बीच
चले गये। इसी बीच के बाद पिता को
बाद में मुझे ले गये।

× × × ×

नवाब ने अपनी ऐसी दृष्टि लड़कियों को दूषित करने
के लिये कुछ दूतियां रख छोड़ी थीं। नाम के लिये

सिद्धू बनी एक झोंपड़े के कोने में बैठी हुई उसके
दो भाई, और अपने बच्चे उसने को
पहुंचाए। फिर एक झाड़ी में पत्तों का मुकुट
सिर पर उसने उसे झुलाया।

इतने में दिलावर खां को दूर से आता
उसने आंखें फोड़ीं, हिंदू बोल न सका। दूर से
ने तंबू तने हुए और कैसाया और कुछ आदमी को
एक ओर को उसके नथुनों में बांधी। फिर एक बड़ी
से दूसरी बड़ी लकड़ी को अग्नि पैदा की और उस
से सिंकने लगे। देखते ही आवश्यकता थी वहीं सिद्धू
दिया। प्रथम ही घंटे में उसका
हुआ। प्रथम तंबू में ही दिलावर खां को सोचने
लगा। उसने कहा,

"हकीम जी, क्या मैं कल जाऊंगा?"

हकीम "नहीं, क्या मैं कल जाऊंगा?"
नहीं नहीं हैं। आप को बहुत तकलीफ
हो जाएगा!"

दिल० "मुझे तो उसकी नहीं होती भाई! मेरा तो
ही घर है।"

हकी० "इसका कारण है। पहले तो खून निकलने
बहुत कमजोरी आ गई है और अभी
अन्दाजन बीस है तो आपके लोग भी आ
यहीं से नहीं सकता है।"

दिल० "लोग? लोग तो कल तीन दिन हुए।"

हकी० "तब तो नहीं बिना सहारों के भी आने
मुमकिन थे।"

दिल० "तो दिन आप
कहीं थे?"

हकी० "आप एक मुर्दे के ऊपर के नीचे दबे थे।
सिर पर जख्म था, आप का कोई नाम
दो उंगली और सिर नहीं पहचाने?"

दिल० "उड़! हकीम जी एक तुम हो और एक
हमारी! हम दोस्त हैं, हमने इस नवाब के लिये क्या नहीं
किया।"

हकी० "हुई में कौम का कुछ नहीं है क्या लड़ना
दोई-तीन कौम कुछ नहीं होती। हर कौम
के दो भी होते हैं, भले भी होते हैं।
आप हिलें-डुलें नहीं अभी ज्यादः बात भी न करें।
मैं आप के लिये थोड़े दूध की छिक्क होता हूं।
कोई तो आराम होने पर दिल्ली चले जाएंगे।"

नंदा देवी

हम पढ़ चुके हैं कि कमाल्पु अकेला (३)
[illegible] था, इसलिये वे संभवतः इसी गुत्थि को
[illegible] युद्ध के आमंत्रित किये गये थे, वह
[illegible] था। कमाल्पु लड़ाकों की तीसरी पीढ़ी
[illegible] इस लिये उन लड़ाकों की घाटी
- बातों से भी बहुत कुछ बढ़ कर था। अतः उसने
इस जाति के युद्ध के संघर्षता की मूल्यवान
दी थी। यही नहीं, अन्तिम दिन उस के पड़ौसी
चौखले का तर्का दिलाव को भी उसी के हाथों
घायल हुआ था। अतः

× ×

× ×

× ×

लड़ाई खत्म हो चुकी थी। लड़ाकों में से बहुत
कम आदमी बचे थे और वे पहाड़ों में जा चुके
थे। फलतः नंदाकोट की अंग्रेजी सेनाएं आगे बढ़ गई
थीं और लोगों को लड़ाकों में आने जाने
की आज़ादी मिल गई थी।

इरीघाट भी उसी दिशा के लिये चल
निकले। युद्ध का दृश्य ताज़ा ही था। कल ही
इसी जगह संग्राम का अन्त हुआ था। चारों ओर
लोथें पड़ी थीं। गृद्ध आदि उन्हें नोंच रहे थे।
सारी भूमि और वनस्पति खून से सनी हुई थी।
इरीघाट के हृदय में करुणा का स्रोत बह निकला। वे सोचने लगे, "मनुष्य को पशु से भी अधम क्यों
जाता है? इस भूमि की माया को आज तक कोई नहीं
ले जा सका है? मैं दिल्ली हो [illegible]
की तो नहीं! कि भी मनुष्य को इन के लिये अपने
भाइयों के गलों पर छुरी [illegible] है? कितने दिनों की
जिंदगी के लिये, [illegible]
क्या इन लोगों ने पर [illegible]
[illegible] तो नहीं [illegible] वेदखल हम हतने [illegible]
[illegible] अदालत [illegible]
आवाज़ आई। इरीघाट चौंके, और उसी दिशा में
आगे बढ़े। कुछ आगे जाने पर ज्ञात हुआ कि
आवाज़ [illegible] से ही [illegible] नीचे से आ रही है। इरीघाट
ने जो [illegible] के मुर्दों को इधर-उधर [illegible]
नहीं, दिलावली [illegible]। इरीघाट उसे पहचानते थे। उस
दिलावली को अचेत था। उस का [illegible] शरीर खून में
लथ-पथ हो रहा था। यहां तक कि [illegible]
लगे हैं, यह भी मालूम [illegible] था। कुछ दिनों
[illegible] इसे हमला घायल शत्रु को भी [illegible]
को [illegible] था। अतः इरीघाट उसे

नवाबज़ादी

नवाब की तरफ़ से तो प्रजा दीक्षित का प्रबंध था नहीं, इसी मदरसे से सब को ज्ञान सिखाया जाता होती थी। उर्दू, संस्कृत, हिंदी - तीनों की पढ़ाई का प्रबंध था। साथ ही हिसी जाति के लिये भेद भाव न थी। छोटे ग्रामों में वैसे भी छुआ छूत का भेद पाश्चात्य की सीमा तक नहीं पहुंचता है, फिर यहां तो इतिहास स्वयं बड़े उदार थे। इसी लिये इस शाला में अछूतों तक के बालक पढ़ते थे।

यही अवस्था मस्जिद की थी। मस्जिद में नमाज़ी नमाज़ आने से वे हिंदी को न छोड़ते थे। वे कहते थे "भाई, भगवान तो सब के पिता हैं। उन के घर में न कोई छोटा है न बड़ा, न ब्राह्मण न शूद्र, न हिंदू न मुसलमान। फिर में होने वाले दीन अवश्य ही ग्राम्य में कुछ लोगों ने इस पर नाक भौं चढ़ाई थी, किंतु धीरे २ नई बात भी चल ही जाती है। अक्सर संध्या समय मस्जिद में एकत्र हो जाते थे और दीन प्रार्थी है, नमाज़ के बाद भजन आदि गाते थे। भजनमंडली में प्रायः हिंदू, ब्राह्मण मुसलमान एक होते जाते थे। हरिकाल का मुसलमानों से भी वैसा ही लड़ाई है। उन के लड़के उन की शाला में पढ़ते थे और उनके से गाने के शौकीन उन के मस्जिद में पधारते थे और उनके गाते सुनते थे। मस्जिद का बेला, सब के हित में लगी था, इस दृष्टि से अनेक मुसलमान मस्जिद के [illegible] द्रव्य - धान्यादि भी भेंट कर जाते थे।

इस के अतिरिक्त हरिकाल वैद्यक से सेवा का तो उन को व्यसन ही था। कितने रोगी होने पर भी वह हिंदू हो, फिर चले ही वह हिंदू हो, [illegible] हो। फिर विशेषता यह कि इस सेवा का पुरस्कार कुछ न लेते थे। वे कहते थे "भगवान तो सभी की दी हुई विद्या है। उसके [illegible] के हाथ बेचना = उन पर अश्रद्धा रखना था। [illegible] लाँ को प्रायः हरिकाल पर ईर्षा होती थी। वह सोचता था कि "मैं लोगों को बुलवाता हूं तब भी वे नहीं आते हैं और इस हिंदू के यहां बिना बुलाए [illegible] ! यह क्यों ? अंतिम मस्जिद इस का कारण या [illegible] ?" किंतु वह हरिकाल की लोकप्रियता को जानता था और इसी लिये उस के [illegible] उपचार का मन में दबा [illegible] था।

नवाब ज़ाबी

यद्यपि इस को ले हलि. घास्टों में मतभेद है लेकिन
—कि कुछ लोगों के [illegible] नवाब के बजाय यह
[illegible] बात है
इच्छाकी तत्कालीन [illegible] ईस्ट इंडिया कम्पनी के [illegible] वारेन
लार्ड हेस्टिंग्ज़ ने ईसे दी थी कि कुछ [illegible]
इच्छा पैदा हुई की हेस्टिंग्ज़ ने इसे प्रोत्साहित किया
हेस्टिंग्ज़ के लिये यह [illegible] विधा। [illegible]
प्रबल और सच्चे मित्रों के [illegible] बड़ा अवसर दी
नवाबी को [illegible] सहता था [illegible]
उस के ऐसा [illegible] के लिये आई था। [illegible]
अतः ये [illegible]-वर्ष-यह [illegible] हुआ।
नवाब और कम्पनी दोनों ही [illegible] से [illegible]
[illegible] और [illegible] उपाय [illegible] जब
चढ़ाई बोल दी। दो [illegible] ने [illegible]
खून की नदियाँ बहाई। [illegible] युद्ध हुआ। प्रत्येक
[illegible] और पहाड़ी [illegible] के लिये एक एक [illegible]
[illegible] से आगे बढ़ी।

(२)

अवध [illegible] की [illegible]
यह भी एक पाँच गांव के नवाब की [illegible]
[illegible] का नाम था [illegible]। [illegible]
की [illegible] के भी [illegible] का खून चूसने में [illegible]
[illegible] के [illegible] के [illegible]
लगा [illegible]। [illegible] के बढ़ाने के [illegible] से [illegible]
[illegible] बढ़ाका [illegible] होते थे। [illegible]
[illegible] बड़े २ नवाबों की नकल [illegible]
ऐश आराम के सामान इकट्ठे किये [illegible]
~~अंग्रेज़ों [illegible] दिखाई दिये~~
~~[illegible] दिखाई देते~~
~~बंदरों को दिखाई [illegible]~~
मुसलमानों को एक बात [illegible] [illegible]
दूकानों में एक २ के [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible]

(1) - (2) (3)

शाब्दिक सामग्री

सांगीतिक सामग्री

सेवासदन और

युद्ध नामक

दो

उपन्यास